इकाई 13 हिंदी आलोचना का विकास

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 हिंदी आलोचना का विकास

13.3 शुक्ल पूर्व हिंदी आलोचना

- 13.3.1 भारतेन्दु पूर्व हिंदी आलोचना
- 13.3.2 भारतेन्दु युगीन हिंदी आलोचना
- 13.3.3 द्विवेदी युगीन हिंदी आलोचना

13.4 शुक्ल युगीन हिंदी आलोचना

13.5 शुक्लोत्तर हिंदी आलोचना

- 13.5.1 स्वच्छंदतावादी
- 13.5.2 ऐतिहासिक
- 13.5.3 मार्क्सवादी
- 13.5.4 मनोविश्लेषणात्मक
- 13.5.5 नयी समीक्षा

13.6 शब्दावली

13.7 सारांश

13.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई हिंदी आलोचना के क्रमिक विकास से संबंधित है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- आलोचना का अर्थ और साहित्य के लिए उसका महत्व स्पष्ट कर सकेंगे;
- तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का हिंदी साहित्य पर पड़ने वाले प्रभावों का उल्लेख कर पाएँगे;
- विभिन्न युगों में आलोचना की मुख्य-मुख्य प्रवृत्तियों को रेखांकित कर सकेंगे; और
- हिंदी आलोचना के विकास में प्रमुख आलोचकों के योगदान की चर्चा कर पाएँगे।

13.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य की विभिन्न गद्य-विधाओं के विकास और उनकी प्रवृत्तियों का अध्ययन आप पिछली इकाइयों में कर चुके हैं। इस इकाई में हम आपको हिंदी आलोचना के इतिहास से परिचित करवा रहे हैं। आलोचना को समालोचना और समीक्षा भी कहा जाता है।

डॉ. गुलाबराय का कथन है -

'आलोचना का मूल उद्देश्य कवि की कृति का सभी दृष्टिकोणों से आस्वाद कर पाठकों को उस प्रकार के आस्वाद में सहायता देना तथा उनकी रुचि को परिमार्जित करना एवं साहित्य की गति निर्धारित करने में योग देना है '।

इस तरह आलोचना, साहित्य की व्याख्या करती है, उसके गुण-दोष बताती है, उसके निर्माण की दिशा निर्धारित करती है।

हम आपको बता दें कि हिंदी आलोचना का इतिहास रीतिकाल से थोड़ा पहले शुरू होता है। रीतिकाल का रीतिबद्ध साहित्य रीतिवादी आलोचना से प्रभावित है और लक्षणों के उदाहरण रूप में रचा गया है। दरअसल, उस समय विवेचना गद्य में नहीं पद्य में की जाती थी। यह माध्यम विवेचन-विश्लेषण के लिए उतना उपयुक्त नहीं था। साहित्य को देखने समझने की दृष्टि बदली तो उसके मूल्यांकन की कसौटी भी बदलती गई। आलोचना में जो युगांतर आया, उसे प्रमुखतः तीन युगों में हम बांट सकते हैं - शुक्ल पूर्व युग, शुक्ल युग और शुकलोत्तर युग। इस इकाई में इन तीनों युगों की विस्तृत चर्चा हम कर रहे हैं ताकि आपको हिंदी आलोचना के क्रमिक विकास की जानकारी मिल सके।

13.2 हिंदी आलोचना का विकास

हिंदी आलोचना का प्रारंभ भी गद्य की अन्य विधाओं के साथ ही साथ भारतेन्दु युग यानी आधुनिक युग से हुआ है। इस युग में मुद्रण कला का विकास हुआ, राजनीतिक जागृति आई और पत्र-पत्रिकाओं का लगातार प्रकाशन हुआ। अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से लोगों को नई-नई जानकारियाँ मिलीं। स्कूल-कालेजों में हिंदी पढ़ाई जाने लगी। अध्यापकों को साहित्य सृजन की नवीन प्रेरणा मिली जिसके फलस्वरूप गद्य में पुस्तकें लिखी जाने लगीं। इस प्रकार धीरे-धीरे गद्य की तमाम विधाओं का विकास हुआ। गद्य का विकास भी आधुनिक आलोचना के उद्‌भव और विकास का सहायक कारण बना। आलोचना के विकास में पाश्चात्य साहित्य और बौद्धिक जागृति प्रधान कारण थे। उस समय एक-एक विषय पर इतनी पुस्तकें प्रकाशित हो रही थीं कि सबको पढ़ना संभव न था। अतः पाठक अच्छी पुस्तकों की उपादेयता को आँकने लगा। इसी से उसमें आलोचना की प्रवृत्ति पैदा हो गई।

हिंदी साहित्य को युगीन परिस्थितियों ने नए आयाम और नए संदर्भ दिए, फलतः आलोचना के पुराने मानदंड अपर्याप्त दिखायी देने लगे और पाश्चात्य समीक्षा साहित्य से प्रेरणा प्राप्त करके हिंदी आलोचना ने नए युग में प्रवेश किया। आलोचना के प्रारंभिक काल में निंदा-स्तुति की अधिकता रही। भारतेंदु काल की आलोचना में भी यही हुआ। इस युग के बाद पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयत्नों से हिंदी आलोचना का स्वरूप कुछ और अधिक व्यवस्थित और सुनियोजित हुआ। हिंदी आलोचना में विश्लेषण और मूल्यांकन की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी आलोचना को शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया। इसलिए हिंदी आलोचना के विकास के केंद्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को मानते हुए हम उसे तीन युगों में बाँट सकते हैं -

1) शुक्ल पूर्व हिंदी आलोचना (1850 से 1920 ई.)

2) शुक्ल युगीन हिंदी आलोचना (1920 से 1940 ई.)

3) शुक्लोत्तर हिंदी आलोचना (1940 से आज तक)

13.3 शुक्ल पूर्व हिंदी आलोचना

जैसा कि हमने पहले चर्चा की कि हिंदी आलोचना की विधिवत् शुरूआत भारतेंदु युग से हुई थी। किंतु इससे पहले भी भक्ति और रीति युग में आलोचना के क्षेत्र में अनेक प्रयास

दिखायी पड़ते हैं। अतः शुक्ल पूर्व हिंदी आलोचना के विकास को दरअसल तीन युगों के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा -

- भारतेन्दु पूर्व हिंदी आलोचना
- भारतेन्दु युगीन हिंदी आलोचना
- द्विवेदी युगीन हिंदी आलोचना

13.3.1 भारतेन्दु पूर्व हिंदी आलोचना

भारतेन्दु से पूर्व भक्ति और रीति युग में आलोचना के क्षेत्र में प्रयास हुए हैं। भक्ति काल में भक्ति का प्रभाव इतना प्रबल है कि वहाँ अलग से काव्य-सिद्धांतों की चर्चा प्रायः नहीं हुई है। भक्त कवियों के लिए काव्य रचना ईश्वर भक्ति का साधन है इसलिए जहाँ ईश्वर है वहाँ उत्तम काव्य भी है। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा भक्तिकाल के ये सभी भक्त कवि इसी आदर्श को मानते हैं। यद्यपि तुलसीदास ने 'सुरसरि सम सब कहं हित होई' तथा 'गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न' कह कर काव्य के प्रति अपनी सजगता भी प्रकट की है। वैसे इस काल में भक्तों के जीवन, विचार, भक्ति से परिचित कराने वाले ग्रंथ लिखे जाने लगे थे जिन्हें 'वार्ता-साहित्य' के नाम से जाना जाता है। भक्त कवियों की कविता के संबंध में भी कहीं-कहीं विचार हुआ है। काव्य के वर्ण्य विषय और शैली संबंधी विशेषताओं के अतिरिक्त काव्य के जन-साधारण पर पड़ने वाले प्रभाव का भी उल्लेख हुआ है किंतु इनमें प्रशंसात्मक दृष्टिकोण ही अपनाया गया है। 'भक्तमाल'में सूर के संबंध में इसी तरह विचार किया गया है।

> उक्ति चोज अनुप्रास बरन-अस्थिति अति भारी।
> बचन प्रीति निर्बाह अर्थ अद्भुत तुक धारी।।
> प्रतिबिम्बित दिवि दिष्टि हृदय हरि लीला भासी।
> जनम करण गुण रूप रसना कर कासी।।

(भक्तमाल पृष्ठ 161)

इसी प्रकार वल्लभाचार्य ने सूर की भक्ति और कविता पर प्रसंगवश जो कुछ भी कहा है, उसमें आलोचना के तत्व निहित हैं।

रीतिकाल में मौलिक विचारों की प्रवृत्ति तो है किंतु गूढ़ चिंतन और विषय के शास्त्रीय एवं यथार्थ ज्ञान का अभाव है। इसका कारण यही हो सकता है कि उस काल में गद्य रचना की पुष्ट परंपरा नहीं थी। रीतिकाल का कवि पहले काव्य के अंगों का लक्षण देता था और बाद में स्वरचित कविताओं को उदाहरण स्वरूप रख देता था। कुछ आचार्यों ने अपने काल के अन्य कवियों की कविताओं का भी उदाहरणों में उपयोग किया है। इस काल में रीति-ग्रंथ बहुत लिखे गए। आचार्यों ने प्रायः काव्य के सभी अंगों पर स्थूल रूप से विचार प्रकट किए। इस युग में संस्कृत समीक्षा शास्त्र की कई शैलियों का अनुकरण किया गया। अनेक कवियों का काव्य शास्त्रीय विवेचन तो आचार्यत्व की कोटि तक पहुँच गया। ऐसे कवियों में प्रमुख हैं - आचार्य केशवदास, चिंतामणि, कृपाराम, पद्माकर, भिखारीदास, देव, घनानंद, मतिराम, बिहारी आदि। इनमें आलोचना की दो विशिष्ट धाराओं को देखा जा सकता है -

- अलंकारवादी
- रसवादी

अलंकारवादी धारा के प्रवर्त्तक केशवदास हैं तो रसवादी धारा के प्रवर्त्तक देव, मतिराम और बिहारी।

हिंदी साहित्य के सर्वप्रथम आचार्य केशवदास माने जाते हैं। संस्कृत के अच्छे विद्वान होने के कारण उन्होंने अलंकार शास्त्र का निरूपण हिंदी में सफलता पूर्वक किया। उन्होंने 'रसिक प्रिया ' और 'कवि प्रिया ' में अलंकार शास्त्र के प्रायः सभी विषयों का प्रतिपादन किया। 'रसिका प्रिया ' का विषय रस है, इसमें श्रृंगार को ही प्रधानता दी गई है। केशवदास रचित 'रामचंद्रिका ' छंदों, अलंकारों और अन्य काव्य-अंगों के उदाहरणों का संग्रह है, साथ ही इसके माध्यम से कवि ने प्रबंध काव्य के शास्त्रीय रूप का भी एक उदाहरण हिंदी साहित्य के सामने रखा है।

चिंतामणि, कुलपति, श्रीपति, दास और प्रतापसिंह जैसे आचार्यों ने संस्कृत समीक्षा के अनुकरण पर ग्रंथों की रचना की। ये सभी आचार्य अलंकारवादी धारा के प्रतिनिधि हैं। इस धारा में चिंतामणि रचित 'कवि-कुल-कल्पतरु ' और 'काव्य विवेक ' सेनापति का 'काव्य कल्पद्रुम ', श्रीपति का 'काव्य सरोज ', प्रतापसिंह कृत 'काव्यविलास ' तथा देव रचित 'शब्द रसायन ' उल्लेखनीय हैं। कवि देव मुख्यतः रसवादी धारा के हैं लेकिन अलंकार शैली में भी उन्होंने रचना की है। रसवादी धारा के आचार्यों ने श्रृंगार रस और नायिका भेद को प्रधानता दी। इस शैली की विशेष उल्लेखनीय पुस्तकें हैं - केशवदास की 'रसिक प्रिया', देव कृत 'भावविलास ', 'रस विलास '; दास की 'रस निर्णय '; पद्माकर रचित 'जगद्विनोद '; मतिराम की 'रसराज ' तथा बिहारी की 'बिहारी सतसई '।

रीतिकाल में पद्यबद्ध टीकाएँ भी लिखी गई हैं। इनकी विशेषता आलोच्य वस्तु के अर्थ को अधिक स्पष्ट करना है किंतु काव्य में निहित सौंदर्य का निर्देश नहीं हुआ है। हाँ, राजस्थान की कृति 'क्रिसन रूक्मिणी री बेलि ' की कई टीकाएँ लिखी गई हैं। इनमें अलंकार निर्देश और काव्य सौष्ठव का विश्लेषण हुआ है। कुछ टीकाएँ राजस्थानी गद्य में भी लिखी गईं।

रीतिकाल के कुछ आचार्यों ने ब्रजभाषा गद्य का प्रयोग भी किया लेकिन गद्य का सम्यक विकास उस समय तक न होने के कारण अधिक सफलता नहीं मिल सकी। वंशीधर और दलपति ने केशव, गंग, बिहारी, मतिराम आदि के छंदों के उदाहरण दिए और अलंकार युक्त अंशों का निर्देश कर दिया। उन्होंने भी गद्य का प्रयोग किया। रीतिकालीन समीक्षा के आदर्श के अनुकूल शास्त्रीय समीक्षा का प्रौढ़ उदाहरण है सरदार कवि कृत 'मानस रहस्य '। यह ग्रंथ सूत्र-शैली में लिखा गया है तथा सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की आलोचनाओं का इसमें सुंदर प्रयोग हुआ है। इसमें रामचरित मानस की व्याख्या की गई है। कहीं-कहीं गद्य में भी विवेचन किया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है -

'निज कर भूसन राम बनाए, सीताहि पहिराये प्रभुसादर ' 'यहाँ राम जानकी परस्पर आलंबन, विभाव कटाक्षादि, अनुमान हर्ष संचारी, रतिस्थायी यामे श्रृंगार है। '

आलोचना का आधार युगीन साहित्यिक अपेक्षाएँ होती हैं। भक्तिकालीन और रीतिकालीन आलोचना के मानदंड आधुनिक साहित्य की आलोचना के लिए पर्याप्त न थे। अतः आलोचना को विकसित करना ज़रूरी हो गया। अब देखें भारतेंदु युग में आलोचना का क्या स्वरूप रहा।

13.3.2 भारतेन्दु युगीन हिंदी आलोचना

भारतेन्दु युग जन-जागरण का युग था। इस युग में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा साहित्य, दर्शन और चिंतन के क्षेत्र में समस्त भारतीय जन-मानस में एक नवीन क्रांति आई । इस युग के साहित्य में वैचारिक अभिव्यक्ति का उपयुक्त माध्यम गद्य ही हो सकता था। अतः गद्य की अनेक विधाएँ नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध की तरह आलोचना का भी विकास हुआ। साहित्य का उपयोगितावादी दृष्टिकोण स्वीकार किया जाने लगा। साहित्य में सुरूचि, नैतिकता और बौद्धिकता को प्रधानता मिलने लगी। भारतेन्दु युग की आलोचना में इन्हीं तीन तत्वों को प्रमुखता दी गई। राष्ट्र-प्रेम इस काल के साहित्य की

प्रधान विशेषताओं में है। अतः आलोचनाओं में भी राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाया गया। जुलाई-अगस्त सन् 1898 ई. में 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका ' में एक उपन्यास की आलोचना हिन्दू-मुस्लिम समस्या को लेकर की गई है जिसमें जातियों के पारस्परिक मेल का समर्थन किया गया है।

भारतेन्दु युग में अधिकांश आलोचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही विकसित होती रहीं। 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन ', 'हरिश्चंद्र चंद्रिका ', 'भारत मित्र ', 'सार सुधा निधि ', 'ब्राह्मण ' आदि पत्रिकाओं में विविध विषयों पर लिखित लेख और टिप्पणियों से आलोचना दृष्टि का विकास हुआ। इस युग में एक ओर जहाँ पत्र-पत्रिकाओं में व्यापक राष्ट्रीय हित एवं समाज कल्याण को दृष्टि में रखकर पुस्तकों की समीक्षा की जा रही थी, वहीं दूसरी ओर रीतिकालीन मूल्यों में विश्वास करने वाले कुछ विद्वान पिंगल, नायिका भेद, रस निरूपण और अलंकार विवेचन में लगे हुए थे। डॉ. नगेंद्र के अनुसार इस युग में तीन प्रकार की आलोचनाओं की प्रधानता रही -

1) रीतिकालीन लक्षण ग्रंथों की परंपरा की सैद्धान्तिक आलोचना।

2) ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली-गद्य में लिखी गई टीकाओं के रूप में प्रचलित आलोचना।

3) इतिहास ग्रंथों तथा कवि-परिचय के रूप में लिखी गई आलोचना।

पहले वर्ग के अंतर्गत पिंगल, अलंकार, रस, सम्पूर्ण काव्यशास्त्र पर लक्षण ग्रंथों की रचना की गई। उदाहरण के लिए जगन्नाथ प्रसाद भानु कृत 'छंद प्रभाकर ' (1894 ई.) और जगन्नाथ् दास रत्नाकर रचित 'घनाक्षरी-नियम रत्नाकर ' (1897 ई.) इस युग में रचित उल्लेखनीय पिंगल ग्रंथ हैं। कुछ महत्वपूर्ण अलंकार ग्रंथ हैं - लछिराम कृत 'रावणेश्वर कल्पतरु ' (1892 ई.) और बिहारी लाल रचित 'अलंकारादर्श ' (1897 ई.)। रस ग्रंथों में साहब प्रसाद सिंह रचित 'रस रहस्य ' (1887 ई.) और प्रतापनारायण सिंह का 'रस कुसुमाकर ' (1894 ई.) उल्लेखनीय हैं। इसमें लक्षण खड़ी बोली गद्य में दिए गए हैं। सम्पूर्ण काव्यशास्त्र को ध्यान में रखकर लिखा गया जानकी प्रसाद का ग्रंथ 'काव्य सुधाकर ' (1886 ई.) उल्लेखनीय है।

द्वितीय वर्ग की आलोचनाओं में टीकाएँ हैं, जिनमें कुछ प्रमुख हैं - 'बिहारी सतसई ' पर की गई लल्लू लाल जी की टीका 'लाल चंद्रिका ' (1819 ई.) जो ब्रजभाषा प्रभावित खड़ी बोली गद्य में है तथा 'बिहारी सतसई ' पर ही प्रभुदयाल पांडेय ने भी 1896 ई. में खड़ी बोली गद्य में एक अच्छी टीका लिखी थी। इन टीकाओं में कहीं-कहीं काव्य गुणों के संकेत मिल जाते हैं।

तृतीय वर्ग के अंतर्गत दो इतिहास ग्रंथ इस काल में लिखे गए -शिव सिंह सेंगर रचित 'शिवसिंह सरोज ' (1878 ई.) और जार्ज ग्रियर्सन लिखित 'द मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ नार्दन हिंदुस्तान ' (1889 ई.) इन इतिहास ग्रंथों में दिए गए कवि परिचयों में आलोचना के तत्व नहीं के बराबर हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन आचार्यों और कवियों के आलोचनात्मक परिचय 'हिंदी प्रदीप ' पत्रिका में प्रकाशित होते रहे।

दरअसल भारतेन्दु युग में पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित पुस्तक समीक्षाओं में ही आधुनिक आलोचना का रूप दिखाई पड़ता है। 'आनंद कादंबिनी ' पत्रिका की 'संयोगिता स्वयंवर ' और 'बंग विजेता ' तथा 'हिंदी प्रदीप ' पत्रिका की 'सच्ची समालोचना ' इस शैली के प्रौढ़ उदाहरण हैं।

भारतेन्दु युग के मुख्य आलोचक हैं – भारतेन्दु, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन ' और बालकृष्ण भट्ट।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को अन्य गद्य विधाओं के साथ ही आलोचना की विधिवत शुरूआत का श्रेय भी दिया जाता है। उन्होंने नाट्यशास्त्र संबंधी महत्वपूर्ण कृति 'नाटक ' (1883 ई.) की रचना कर आधुनिक हिंदी आलोचना का प्रारंभ किया। इस निबंध में लगभग साठ पृष्ठों में नाटक का शास्त्रीय विवेचन और इतिहास प्रस्तुत किया गया है। यह निबंध यद्यपि संस्कृत नाट्यशास्त्र को आधार बनाकर लिखा गया है किंतु इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्राचीन नाट्य शास्त्र की जानकारी दी गई है। साथ ही युग प्रवृत्ति का ध्यान रखकर प्राचीन जटिल शास्त्रीय नियमों से छूट लेने की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है –

'संस्कृत नाटक की भाँति हिंदी नाटक में इनका अनुसंधान करना या किसी नाटकांग में इनको यत्नपूर्वक रखकर हिंदी नाटक लिखना व्यर्थ है, क्योंकि प्राचीन लक्षण रखकर आधुनिक नाटकादि की शोभा सम्पादन करने से उल्टा फल होता है और यत्न व्यर्थ हो जाता है। '

भारतेन्दु ने संस्कृत साहित्य से ब्रज साहित्य तक का गहन अध्ययन किया। उन्होंने संस्कृत और हिंदी के आचार्यों और कवियों – कालिदास, रामानुजाचार्य, शंकराचार्य जयदेव, पुष्पदंताचार्य, वल्लभाचार्य तथा सूरदास पर जीवन-वृत्तांतीय आलोचना प्रस्तुत की और जगह-जगह अपनी तुलनात्मक दृष्टि का भी परिचय दिया। इस प्रकार भारतेन्दु ने अपने समकालीन लेखकों को आलोचना की ओर प्रवृत्त किया।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' : भारतेन्दु मंडल के लेखकों में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन ' का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने श्रीनिवासदास रचित 'संयोगिता स्वयंवर ' नाटक और गदाधर सिंह लिखित 'बंग विजेता ' उपन्यास के हिंदी अनुवादों की विस्तृत आलोचना 'आनंद कादम्बिनी ' पत्रिका में की थी। इसी से व्यावहारिक हिंदी आलोचना का सूत्रपात माना जाता है। इन्होंने अपनी आलोचना में पुस्तक के गुण-दोषों का तटस्थ और साहित्यिक विश्लेषण किया है।

बालकृष्ण भट्ट – भट्ट जी ने संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन किया था। उन्होंने संस्कृत के अनेक कवियों एवं आचार्यों – भवभूति, कालिदास, श्रीहर्ष, क्षेमेन्द्र, वाराहमिहिर, आनंदवर्द्धन, भट्टनारायण, राजशेखर, बाणभट्ट, विल्हण, बाल्मीकि, व्यास गोवर्धनाचार्य और जयदेव के जीवन वृत्तांत प्रस्तुत करते हुए आलोचना लिखी और स्थान-स्थान पर उनकी साहित्यगत प्रवृत्तियों में साम्य-वैषम्य दर्शाकर अपनी तुलनात्मक दृष्टि का परिचय दिया। उनकी आलोचना का माध्यम 'हिंदी प्रदीप ' पत्रिका थी जिसका सम्पादन वे स्वयं करते थे।

भट्ट जी ने सैद्धांतिक विवेचन का उपयोग व्यावहारिक आलोचना में किया है। वे रचना की समीक्षा के मानदंड का उल्लेख सिद्धांतों के रूप में पहले कर देते हैं, फिर उसी आधार पर कृति का मूल्यांकन करते हैं। भट्ट जी की 'सच्ची समालोचना ' इसका सुंदर उदाहरण है। उन्होंने 'नीलदेवी ', 'परीक्षा गुरु ', 'संयोगिता स्वयंवर ' तथा 'एकांतवासी ' आदि कृतियों पर जो व्यावहारिक आलोचनाएँ लिखी हैं वे उल्लेखनीय हैं। भट्ट जी कवि के परिचय में तो तटस्थ, गंभीर और विश्लेषणात्मक हैं लेकिन पुस्तकों की आलोचना में कहीं-कहीं मीठी चुटकियाँ भी ले लेते हैं। उनकी शैली व्यंग्य-प्रधान है।

इस प्रकार भारतेन्दु काल के समीक्षकों का ध्यान काव्य के अत्यंत बाह्य और स्थूल रूप पर ही था। काव्य के भीतर भाव-जगत में प्रविष्ट होकर उन्होंने विश्लेषण नहीं किया। लेकिन इतना ज़रूर है कि नयी समीक्षा के भावी विकास का पूर्वाभास भारतेन्दु काल में मिलने लगा था। आगे द्विवेदी युग में हिंदी आलोचना को नया और विस्तृत स्वरूप मिला।

13.3.3 द्विवेदी युगीन हिंदी आलोचना

हिंदी आलोचना को विकसित करने में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का योगदान सराहनीय है। उन्हीं का अनुसरण करते हुए द्विवेदी युग के अन्य लेखक भी आलोचना की ओर अग्रसर हुए। द्विवेदी युगीन हिंदी आलोचना में धीरे-धीरे अधिक तर्क शक्ति, विचार क्षमता और सद्विवेकिनी शक्ति ने प्रवेश करना शुरू किया। भारतीय और पाश्चात्य साहित्य सिद्धांतों के अध्ययन और चिंतन के फलस्वरूप आलोचना की दृष्टि बहुत कुछ वैज्ञानिक होने लगी। पुस्तकीय समीक्षा से परे हिंदी आलोचना की कई महत्वपूर्ण पद्धतियाँ द्विवेदी युग में विकसित हुईं। इस युग में 'सरस्वती ' के अतिरिक्त 'माधुरी ', 'वीणा ', 'विशाल भारत ', 'साहित्य समालोचक ', 'मर्यादा ' आदि पत्रिकाओं ने आलोचना के विकास में बहुत योग दिया। द्विवेदी युग में हिंदी आलोचना के पाँच रूप मिलते हैं -

1) शास्त्रीय आलोचना

2) तुलनात्मक आलोचना

3) अनुसंधानपरक आलोचना

4) परिचयात्मक आलोचना

5) व्याख्यात्मक आलोचना

प्रथम वर्ग की शास्त्रीय आलोचना में संस्कृत आचार्यों की पद्धति पर लक्षण-ग्रंथ लिखने की परंपरा है जो रीतिकाल से चली आ रही थी। इस प्रकार की आलोचनाओं में जगन्नाथ प्रसाद भानु कृत 'काव्य प्रभाकर ' (1910 ई.) तथा 'छंद सारावली ' (1917 ई.) और लाला भगवानदीन रचित 'अलंकार मंजूषा ' (1916 ई.) महत्वपूर्ण हैं। जगन्नाथ प्रसाद ने अंग्रेजी में भूमिका लिखी है और हिंदी के पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेजी पर्याय भी दिए हैं। लाला भगवानदीन ने हिंदी अलंकारों की समुचित जानकारी देने के साथ ही साथ फारसी, अरबी और अंग्रेजी अलंकारों का भी उल्लेख किया है।

तुलनात्मक आलोचना द्विवेदी युग की प्रमुख प्रवृत्ति कही जा सकती है। इस क्षेत्र में पं. पद्मसिंह शर्मा का नाम महत्वपूर्ण है। उन्होंने बिहारी और देव की तुलना द्वारा 1907 ई. में तुलनात्मक आलोचना का आरंभ किया। मिश्र बंधुओं (पं. गणेश बिहारी, श्याम बिहारी तथा शुक्रदेव बिहारी) द्वारा रचित 'हिंदी नवरत्न ' (1910 ई.) में भी तुलनात्मक आलोचना को महत्व दिया गया। लाला भगवानदीन और कृष्णबिहारी मिश्र ने देव और बिहारी की विशद तुलना करते हुए एक को दूसरे से बड़ा सिद्ध करने का प्रयत्न किया।

अनुसंधानपरक आलोचना का विकास 'नागरी प्रचारिणी ' पत्रिका (1897 ई.) के प्रकाशन से हुआ। शोधपरक आलोचना के उल्लेखनीय आलोचक हैं - मिश्र बंधु, श्यामदास, जगन्नाथ दास रत्नाकर और सुधाकर द्विवेदी। मिश्र बंधु रचित 'मिश्र बंधु-विनोद' (1913 ई.) में कवियों के जीवन-वृत्तों के साथ उनकी कृतियों की जानकारी तथा उनके काव्य के संबंध में अपना मत प्रकट किया गया। आगे चलकर चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने जयपुर से 'समालोचक ' (1902 ई.) पत्र निकाला जो मुख्यतः आलोचना का पत्र था। इस पत्र से हिंदी आलोचना का स्तर ऊँचा हुआ।

परिचयात्मक आलोचना में 'सरस्वती' के माध्यम से स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखी गई आलोचनाएँ हैं। द्विवेदी जी ने विषय विवेचन के साथ ही भाषा संबंधी त्रुटियों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया। यह कार्य उन्होंने अपनी समालोचना द्वारा ही किया। उन्होंने 'समालोचना-समुच्चय' नाम से अलग से भी अपना एक निबंध संग्रह प्रकाशित किया जिसमें ज्ञान-विज्ञान तथा प्राचीन काव्य से संबंधित उनके कई महत्वपूर्ण लेख संग्रहीत हैं। उन्होंने अपनी आलोचना में उन्हीं कृतियों को महत्व दिया जो सामाजिक उत्थान और

राष्ट्रीय विकास की भावना फैला रही थीं। द्विवेदी जी संस्कृत के कालिदास, भवभूति, भक्तिकाल के सूर-तुलसी तथा आधुनिक हिंदी के भारतेन्दु तथा मैथिलीशरण गुप्त के प्रशंसक थे। उनका आलोचनात्मक ग्रंथ 'हिंदी कालीदास की आलोचना ' (1901 ई.) हिंदी में आलोचना-साहित्य की किसी कवि पर पूरी तरह विचार करने वाली पहली पुस्तक मानी जाती है।

व्याख्यात्मक आलोचना में आलोच्य विषय की उपयोगिता को ध्यान में रखा जाता है तथा नैतिक, समाजिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय और सौंदर्यपरक मूल्यों के आधार पर विशद और गंभीर विवेचन किया जाता है। बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' में 'नील देवी', 'परीक्षा गुरु' और संयोगिता स्वयंवर' की गंभीर आलोचना करके इस पद्धति को मजबूत किया। बालमुकुंद गुप्त ने 'हिंदी बंगवासी' में 'अश्रुमती' नामक बंगला नाटक के हिंदी अनुवाद (मुंशी उदित नारायण कृत) की आलोचना द्वारा इस परंपरा को आगे बढ़ाया। किंतु आलोचना की इस गंभीर शैली का पूर्ण विकास आगे चलकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया।

इस तरह द्विवेदी युग में आलोचना के दो प्रतिमान मुख्य रहे - एक तो परंपरागत शास्त्रीय दृष्टि जिसके आधार पर आलोच्य कृति के गुण-दोषों का विवेचन किया जाता था और उसे उत्कृष्ट या हीन बताया जाता था। दूसरी नैतिक-सांस्कृतिक मूल्यों की दृष्टि जो आलोच्य कृति के प्रभाव को ध्यान में रखकर उसे श्रेष्ठ या हीन सिद्ध करती थी।

बोध प्रश्न

1. आलोचना की शुरूआत के मुख्य कारण क्या थे?

   ....

   ....

   ....

   ....

2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को केन्द्र में रखते हुए हिंदी आलोचना को कौन-कौन से युगों में बाँटा गया?

   ....

   ....

   ....

3. शुक्ल पूर्व युगीन हिंदी आलोचना को कौन-कौन से तीन वर्गों में विभक्त किया गया?

   ....

   ....

   ....

   ....

4. भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग में लिखी गयी तीन-तीन आलोचना की पुस्तकों के नाम बताइए।

   ....

   ....

   ....

   ....

अभ्यास

1. शुक्ल पूर्व युग की हिंदी आलोचना की प्रमुख प्रवृत्तियाँ 15 पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

13.4 शुक्ल युगीन हिंदी आलोचना

वास्तव में हिंदी आलोचना का पूर्ण रूप शुक्ल युग में ही निखर पाया और इसका श्रेय इस युग के प्रमुख आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल को है। शुक्ल युग से पूर्व दोष-दर्शन, गुणकथन, निर्णय और तुलना जैसे स्थूल तत्वों को प्रमुखता दी जाती थी पर आचार्य शुक्ल ने अपनी आलोचना में विश्लेषण (Analysis), विवेचन (Interpretation) और निगमन (Induction) जैसे तत्वों को प्रमुखता दी जिनमें आलोचक की तटस्थता का तत्व भी निहित था। कवि विशेष के सामान्य गुण-दोष प्रकट करने के साथ ही उसके काव्य की मूल प्रवृत्तियों और उसमें निहित शाश्वत तत्वों की छानबीन भी की गई। कृति को देशकाल सापेक्ष रखकर परखा गया और मानवीय मूल्यों को प्रमुखता दी गई। इतना ही नहीं संस्कृत काव्य शास्त्रीय सिद्धांतों के प्रकाश में नए पश्चिमी काव्य शास्त्रीय सिद्धांतों को भी स्थान दिया गया। समीक्षा की इस नई परपाटी को जन्म देने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को ही है इसीलिए इस युग को शुक्ल युग के नाम से अभिहित किया गया।

इस युग में समीक्षा के लिए जो मानदंड और शैली अपनाई गई उनमें प्रमुख है –

- सुरुचि और नैतिकता
- शास्त्रीयता
- कवि के व्यक्तित्व का अध्ययन
- तुलना और निर्णय
- देशकाल की समीक्षा

सुरुचि और नैतिकताः इस युग के आलोचकों ने साहित्य की नैतिक उपयोगिता को स्वीकार किया और वे कला में उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा के हिमायती रहे। इन आलोचकों ने माना कि साहित्य जीवन की व्याख्या है। साधारणीकरण का सिद्धांत भी उन्होंने स्वीकार किया। यही वजह रही कि इस युग में केशव, कबीर और रीतिकालीन कवियों का महत्व कम माना गया। जायसी की अपेक्षा कबीर के रहस्यवाद को तथा तुलसी की तुलना में सूर को कम आँका गया। हालाँकि बाद में शुक्लजी ने सूर संबंधी अपनी मान्यताओं का खंडन किया।

शास्त्रीयताः इस कोटि की आलोचना की विशेषता है काव्य-शास्त्र के अनुसार चलना। इस युग के आलोचकों ने भारतीय और पाश्चात्य दोनों प्रकार के तत्वों का उपयोग किया है लेकिन शुक्लजी की तरह वे समन्वय नहीं कर सके। उन्होंने रस, अलंकार, गुण, वृत्ति आदि का भी उपयोग किया तथा साथ ही कल्पना, अनुभूति आदि पाश्चात्य तत्वों को भी ग्रहण किया। बाबू श्यामसुंदर दास में भी दोनों परंपराएँ अलग-अलग हैं। (साहित्यालोचन)

हिंदी में कहानियों, नाटकों उपन्यासों और निबंधों पर इस युग में शास्त्रीय समालोचना बहुत कम हुई। उपन्यासों की आलोचना में वस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, उद्देश्य आदि तत्वों का पाश्चात्य दृष्टिकोण से विचार हुआ है जैसे, जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज ' रचित 'प्रेमचंद की उपन्यास कला '। कहानी और निबंधों के संग्रहों की भूमिकाओं में भी इन विधाओं की तात्विक समीक्षाएँ हुई हैं। डॉ. श्रीकृष्ण लाल, शिलीमुख आदि के कहानी संग्रहों की भूमिकाएँ इसके अच्छे उदाहरण हैं। वैधानिक समालोचना (जिसमें शास्त्रीय तत्वों का आरोप किया गया हो) का सबसे सुंदर उदाहरण पं. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी द्वारा लिखित ''महाकवि हरिऔध का प्रियप्रवास'' है जिसमें रस, अलंकार की दृष्टि से तो विचार किया ही गया है, पाश्चात्य साहित्य सिद्धांतों की दृष्टि से भी जांचा-परखा गया है। इस युग में शास्त्रीय समीक्षा के कुछ अच्छे उदाहरण हैं - प्रेमनारायण टंडन का ''गोदान और गबन'' डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा का ''प्रसाद जी के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन'', डॉ. सत्येन्द्र रचित ''प्रेमचन्द की कहानी कला''।

कवि के व्यक्तित्व का अध्ययनः शुक्ल युग के आलोचकों ने आलोच्य कवियों की रचनाओं के अध्ययन के साथ कवि के व्यक्तित्व को समझने समझाने का प्रयत्न किया। वस्तु-विन्यास, रस-पद्धति, अलंकार नियोजन, चरित्र कल्पना, जीवन की व्याख्या आदि का विश्लेषण करके कवि की सामान्य प्रवृत्तियों का उद्घाटन करना ही आलोचक का मुख्य ध्येय हो गया। इसके अतिरिक्त कवि की कृतियों के आधार पर उसी चिंतन-धारा का अध्ययन भी किया, जैसे डॉ. रामकुमार वर्मा लिखित 'कबीर' और डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल कृत 'निर्गुण सम्प्रदाय 'संबंधी आलोचना।

शुक्ल युग में आलोचना की एक और पद्धति सामने आई (मनोवैज्ञानिक) जिसमें कवि के व्यक्तित्व और कलाकृति में अभिन्न संबंध स्थापित किया गया। इस पद्धति में आलोचक कवि के व्यक्तित्व का वह अंश स्पष्ट कर देता है जिससे कवि को अपनी विशेष विचारधारा और भावात्मकता के लिए सामग्री और प्रेरणा प्राप्त हुई है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'तुलसीदास' के विवेचन में इस पद्धति को अपनाया। डॉ. सत्येन्द्र ने 'गुप्त जी की कला ' पर इसी दृष्टि से विचार किया।

इस युग में चरितमूलक आलोचना के भी फुटकर प्रयास हुए। इसमें कवि द्वारा कथित अंतरंग प्रमाणों के आधार पर जीवनी का अध्ययन किया जाता है।

तुलना और निर्णयः ये दोनों पद्धतियाँ आरंभ से ही चली आ रही थीं। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि प्राचीन कवियों पर इसी तरह की आलोचना हुई है। शुक्ल जी कबीर के रहस्यवाद को साधनात्मक मानते हैं पर उनमें प्रेम की व्यंजना नहीं मिलती अतः शुक्ल जी की दृष्टि से जायसी का रहस्यवाद अधिक स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी है। लेकिन बाबू श्यामसुंदर दास को यह मान्य नहीं। इस प्रकार इन दोनों आलोचनाओं में तुलना और निर्णय स्पष्ट है। कृष्ण बिहारी मिश्र (देव और बिहारी) और भगवानदीन (बिहारी और देव) ने तुलनात्मक आलोचना पद्धति अपनाई।

देशकाल की समीक्षा : साहित्य को उसकी परिस्थितियों में रखकर आँकने की आलोचनात्मक पद्धति का सूत्रपात शुक्ल जी ने ही किया। उन्होंने सूर, तुलसी आदि कवियों के महत्व को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रखकर आँका। 'हिंदी शब्द सागर ' की भूमिका में शुक्लजी ने हिंदी साहित्य का इतिहास प्रस्तुत किया। इतना ही नहीं उन्होंने

कवियों एवं काव्यधाराओं के देशकाल पर विचार किया। इस युग के आलोचकों ने भी इस ऐतिहासिक समीक्षा पद्धति का उपयोग किया। पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भूषण की कविता को देशकाल की परिस्थितियों में रखकर उस पर विचार किया।

शुक्ल युग के प्रमुख आलोचक हैं गुलाबराय, बाबू श्यामसुंदर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु', विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, डॉ. रामकुमार वर्मा आदि।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी आलोचना क्षेत्र में प्रवेश करते ही सबसे महत्वपूर्ण कार्य किया-साहित्यिक रुचि में परिवर्तन। इससे पूर्व हिंदी के आलोचक रीति साहित्य को ही उपयुक्त मानते थे। शुक्ल जी ने पूरी साहित्यिक परम्परा का पुनर्गठन किया। उन्होंने अपनी व्यावहारिक आलोचना के माध्यम से हिंदी कवियों का जो क्रमिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया, वह उनके समय की बदली रुचि का प्रमाण है। शुक्ल जी ने लोकमंगलकारी रूप को साहित्य के मूल्यांकन का आधार बनाया और पहली बार मूल्यांकन के मौलिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। उन्होंने प्राचीन भारतीय तथा पाश्चात्य आलोचना सिद्धांतों का गहन अध्ययन कर समन्वयवादी आलोचना सिद्धांतों की रचना की। शुक्ल जी ने 'कविता क्या है ', 'साहित्य', 'काव्य में रहस्यवाद' आदि निबंधों से सैद्धांतिक समीक्षा का सूत्रपात किया। 'चिंतामणि' में संकलित निबंधों से उनके व्यापक अध्ययन और गहरी मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय मिलता है।

शुक्ल जी ने हिंदी में पहली बार रस-विवेचन को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया। रस मीमांसा में रस के शास्त्रीय विवेचन की मौलिक व्याख्या की। उन्होंने रस को काव्य की आत्मा तो माना, परन्तु रस की परम्परागत व्याख्या उन्हें मान्य न थी। उन्होंने अपने रसवाद में अनुभूति को सर्वोपरि महत्व देकर उसे लोक मानस से जोड़ा। वे अनुभूति प्रधान काव्य को ही उत्तम काव्य समझते थे। उनकी अनुभूति आत्माभिव्यक्ति प्रधान अनुभूति से भिन्न थी। उनका मानना था कि 'लोक हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस दशा है।' इस प्रकार उन्होंने साधारणीकरण की पुनः प्रतिष्ठा की। रसवादी, नीतिवादी और लोकमंगलवादी होने के कारण शुक्ल जी ने तुलसी और जायसी के काव्य सौष्ठव का उद्‌घाटन किया, किन्तु कबीर, रीतिकाल और छायावाद के कवियों को उचित महत्व न दे सके। इसी तरह प्रबंध काव्य को उन्होंने श्रेष्ठ माना और मुक्तक काव्य तथा गीतात्मकता को उनका उतना समर्थन नहीं मिल पाया।

शुक्ल जी के आलोचक व्यक्तित्व की एक बहुत बड़ी विशेषता थी-व्यापक और सजग दृष्टि। अपने समय के हर साहित्यिक विवाद की तरफ उनका ध्यान जाता था और वे उस पर अपनी राय भी देते थे। जितनी लगन से वे प्राचीन और मध्ययुगीन काव्य का विवेचन करते थे उतना ही ध्यान आधुनिक साहित्य और विषयों पर भी देते थे। तभी तो काव्य के अतिरिक्त अपने समय के गद्य-साहित्य की सभी पद्धतियों और प्रवृत्तियों को समझ कर उन्होंने इतिहास में उसका विवेचन किया।

निबंध की विवेचना में उन्होंने लिखा - 'यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में ही सबसे अधिक संभव होता है।'

आचार्य शुक्ल के प्रमुख ग्रंथ हैं - 'जायसी ग्रंथावली ' (1925 ई.), भ्रमरगीतसार (1926 ई.), 'गोस्वामी तुलसीदास ' (1933 ई.), 'हिंदी साहित्य का इतिहास ' (1929 ई.)।

बाबू श्याम सुंदरदास : बाबू श्याम सुंदरदास का शुक्ल जी के समकालीन आलोचकों में प्रमुख स्थान है। इन्होंने भी आलोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। बाबूजी ने सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों क्षेत्रों में कार्य किया लेकिन शुक्ल जी की तरह वे दोनों

का समन्वय नहीं कर सके। 'साहित्यालोचन ' ग्रंथ की रचना उन्होंने एम.ए. के विद्यार्थियों को विषय की अधिकाधिक जानकारी देने के लिए की। इस ग्रंथ में उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य सिद्धांतों का समन्वय करके साहित्य समीक्षा को उदार बनाया। बाबूजी का सिद्धांत प्रतिपादन शास्त्रीय एवं तर्क संगत है। उन्होंने कवियों की प्रामाणिक जीवनी अद्वितीय ढंग से प्रस्तुत की। उन्होंने रस और अलंकार के साथ-साथ उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना आदि नवीन विधाओं का भी विवेचन किया। नाटक पर उन्होंने 'रूपक रहस्य ' की रचना की।

'कबीर ग्रंथावली की भूमिका ', 'हिंदी साहित्य का इतिहास ' तथा 'भारतेंदु हरिश्चंद्र ', उनकी व्यावहारिक आलोचना के प्रतिनिधि ग्रंथ हैं। इनके अतिरिक्त बाबूजी ने पत्र-पत्रिकाओं में बहुत से आलोचनात्मक लेख भी लिखे। 'नागरी प्रचारिणी ' पत्रिका में तो उनके लेख बराबर ही प्रकाशित होते रहे। प्राचीन पुस्तकों के शोध कार्य का विवरण भी इसी पत्रिका के माध्यम से देते रहे जो कम महत्व नहीं रखता। इस प्रकार बाबूजी ने हिंदी के आलोचना शास्त्र को स्वतंत्र रूप से विकसित करने का प्रयत्न किया और इस दिशा में कार्य करने के लिए अध्यापकों और शोधार्थियों को प्रोत्साहित किया।

गुलाबरायः गुलाबराय ने 'साहित्य संदेश ' नामक आलोचनात्मक पत्रिका का सम्पादन करके हिंदी आलोचना के प्रचार-प्रसार में काफी योग दिया। उन्होंने दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक आधार पर काव्य सिद्धांतों की परख 'जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत ' (1942 ई.) ग्रंथ में की।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : मिश्र जी का मध्ययुगीन काव्य की साफ-सुथरी टीकाओं के लिए तत्कालीन आलोचना में महत्वपूर्ण स्थान है। 'वाङ्.मय विमर्श', 'बिहारी की वाग्विभूति', 'हिंदी साहित्य का अतीत' और 'हिंदी का सामयिक साहित्य' ग्रंथों की रचना द्वारा मिश्र जी ने सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समीक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया।

तीसरे दशक की आलोचना के विकास में छायावादी कवियों का भी उल्लेखनीय योगदान है। छायावादी काव्य पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के लगाए गए आरोपों के जवाब में छायावादी कवियों ने अपनी कविता के बचाव में जो आलोचनाएँ लिखीं, उनका बड़ा महत्व है। उन्होंने आलोचना को नई दिशा देने के लिए प्राचीन शास्त्रवादी साहित्यिक मूल्यों का विरोध तो किया ही, नए मूल्यों के प्रश्न भी खड़े किए।

सबसे पहले सुमित्रानंदन पंत ने 'पल्लव ' (1927 ई.) और 'वीणा' (1929) की भूमिकाओं में रीतिकाल से द्विवेदी युग तक की कविता की कमियाँ बताते हुए छायावादी कविताओं की वकालत की। जयशंकर प्रसाद ने 1936 ई. में 'हंस' के अनेक अंकों में काव्य की आलोचना विषयक निबंध लिखे जिसका संकलन बाद में 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' (1939 ई.) शीर्षक से हुआ। इन निबंधों में उन्होंने काव्य और कला, रहस्यवाद, नाटकों में रस का स्थान, रंगमंच, यथार्थवाद, छायावाद आदि के संबंध में अपने विचार प्रकट किए। प्रसाद ने छायावाद की आलोचना से संबंधित तीन काम किये-छायावाद को भारतीय चिंतन परंपरा से विकसित माना, छायावाद को मात्र शैली चमत्कार न मानकर उसका संबंध अनुभूति, चमत्कार से जोड़ा तथा छायावादी कविता के सौंदर्य में निहित शिवत्व के दर्शन कराए।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने 'पंत और पल्लव' (1927 ई.) शीर्षक निबंध माला की कविताओं का सूक्ष्म विश्लेषण किया। 'परिमल की भूमिका' (1930 ई.) में निराला ने मुक्त छंद के विवेचन द्वारा हिंदी में एक नए छंद शास्त्र की स्थापना की। इतना ही नहीं छायावाद के संदर्भ में अपने विरोधियों को उत्तर देने के लिए अनेक पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखे जिनमें भाषा, छंद, तुक, लय, समसामयिकता, सार्वदेशिकता, स्थानीयता आदि को लेकर

अनेक मौलिक प्रश्न उठाए जो भावी आलोचना के लिए मार्गदर्शक बने। महादेवी ने भी 'सांध्यगीत ' (1936 ई.) की भूमिका में छायावाद और रहस्यवाद की व्याख्या का प्रयत्न किया। 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध ' उनके स्फुट लेखों का संग्रह है।

छायावाद के समर्थकों में नंददुलारे वाजपेयी, अवध उपाध्याय, कृष्णदेव प्रसाद गौड़, शांतिप्रिय द्विवेदी, रामनाथ लाल 'सुमन ' और डॉ. नगेन्द्र आदि उल्लेखनीय हैं।

बोध प्रश्न

5. हिंदी आलोचना में आचार्य शुक्ल को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। उन्होंने हिंदी आलोचना को कौन-सी नई प्रवृत्तियां दीं? चार पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

6. निम्नलिखित पुस्तकों के सही लेखक बताइए।

i) प्रेमचंद की उपन्यास कला	डॉ. रामकुमार वर्मा
ii) कबीर	जनार्दन प्रसाद झा
iii) रस मीमांसा	बाबू श्यामसुंदर दास
iv) साहित्यालोचन	आचार्य रामचंद्र शुक्ल
v) देव और बिहारी	डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा
vi) प्रसाद जी के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन	कृष्ण बिहारी मिश्र

13.5 शुक्लोत्तर हिंदी आलोचना

शुक्लोत्तर हिंदी आलोचना अपने युग के प्रभावों को ग्रहण करती हुई विकसित होती रही। दो विश्व युद्धों का विनाशकारी प्रभाव पश्चिमी देशों में दिखाई पड़ने लगा था। यूरोप में वैज्ञानिकता और भौतिकता के व्याप्त होने से नैतिक मूल्यों का विघटन होने लगा था। वहाँ भोगवादी और अर्थवादी मूल्यों को महत्व दिया जाने लगा। फ्रायडवादी, मार्क्सवादी और अस्तित्ववादी विचारधारा का प्रभाव पाश्चात्य साहित्य पर पड़ने लगा। विश्वव्यापी इन चिंतन धाराओं से भारत भी अछूत नहीं रह सका। भारत के जीवन में नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का कुछ सीमा तक विघटन हुआ। फलस्वरूप साहित्य में संघर्ष चेतना की अभिव्यक्ति के लिए तरह-तरह के प्रयोग किए जाने लगे। हिंदी आलोचना भी उन्हीं के अनुरूप ढलती गई और शुक्लोत्तर युग में आलोचना अनेक धाराओं में विकसित हुईः-

- स्वच्छंदतावादी समीक्षा
- ऐतिहासिक समीक्षा
- मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा
- मार्क्सवादी आलोचना
- कुछ अन्य विशिष्ट आलोचक

13.5.1 स्वच्छंदतावादी

छायावाद के साहित्यिक विश्लेषण के लिए स्वच्छंदतावादी एवं सौष्ठववादी समीक्षा पद्धति की शुरूआत हुई। इस नयी समीक्षा के मानदंड के तत्वों का निर्माण छायावाद की प्रमुख विशेषताओं से हुआ। साथ ही अंग्रेजी की रोमांटिक कविता तथा रोमांटिक क्रिटिसिज्म के अध्ययन का भी इस पर प्रभाव पड़ा। छायावादी काव्य में आत्माभिव्यंजन की प्रधानता से व्यक्तिवादी साहित्य चेतना का जन्म हुआ। इसलिए स्वच्छंदतावादी आलोचकों ने प्राचीन सिद्धांतों से अलग हट कर काव्य में सूक्ष्म-सौन्दर्य और सौष्ठव देखने का प्रयत्न किया। आलोचकों ने उपादेयता के आधार पर साहित्य का मूल्यांकन न कर आनंद को प्रधानता दी। इस समीक्षा में जीवन के प्रति एक ऐसा भावमय दृष्टिकोण है जो अनुभूति को केन्द्र में रखकर विकसित होता है। स्वच्छंदतावादी समीक्षा पद्धति के प्रतिनिधि आलोचक हैं – पं. नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र और पं. शांतिप्रिय द्विवेदी। छायावाद के मूल्यांकन के प्रश्न पर इन आलोचकों ने आचार्य शुक्ल का विरोध किया था।

पं. नंददुलारे वाजपेयीः पं. नंददुलारे वाजपेयी छायावाद के समर्थ आलोचक और स्वच्छंदतावादी समीक्षा पद्धति के प्रतिनिधि समालोचक रहे। वाजपेयी ने द्विवेदी काल के उत्तरार्द्ध में आलोचना-क्षेत्र में प्रवेश किया था। तब 'सरस्वती' आदि पत्रिकाओं के माध्यम से उनकी आलोचनाएँ प्रकाशित होती रहती थीं। डॉ. भगवत स्वरूप मिश्र ने वाजपेयी जी की आलोचना की दो प्रधान विशेषताएँ बताई हैं – कलाकार की अर्न्तवृत्तियों का अध्ययन तथा कलाकृति के सौष्ठव का अनुभूतिपूर्ण विश्लेषण। वाजपेयी जी ने द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता तथा शुक्ल जी के प्रबंधकाव्यवाद, मर्यादावाद और नैतिकवाद से हिंदी आलोचना को मुक्त किया। उन्होंने काव्य-शास्त्र के सिद्धांतों का विवेचन भी किया। उन पर पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धांतों का पर्याप्त प्रभाव था, इस कारण उन्होंने भारतीय रसवाद के सिद्धांत की व्याख्या भारतीय साहित्यशास्त्र के रूढ़ शब्दों में नहीं की। वाजपेयी जी ने रसानुभूति संबंधी अलौकिकता को अस्वीकार किया और कला मात्र के आनंद को रस नाम से अभिहित किया। वाजपेयी जी को छायावादी, प्रगतिवादी प्रयोगवादी रचनाओं की गंभीर और विस्तृत समीक्षा का श्रेय जाता है।

वाजपेयी जी के प्रधान आलोचना ग्रंथ हैं – 'हिंदी साहित्यः बीसवीं शताब्दी', 'जयशंकर प्रसाद', 'सूर संदर्भ की भूमिका', 'आधुनिक साहित्य', 'महाकवि सूरदास', और 'नया साहित्य नए प्रश्न '।

डॉ. नगेन्द्र : डॉ. नगेन्द्र भी स्वच्छंदतावादी एवं सौष्ठववादी समीक्षा पद्धति के आलोचक हैं। उन्होंने समीक्षा का आरंभ छायावाद पर स्फुट निबंध से किया। 'हंस ' (1937 ई.) में उनका पहला निबंध जो सुमित्रानंदन पंत पर था, प्रकाशित हुआ। छायावादी काव्य की अन्तर्मुखी साधना, सौन्दर्य चेतना और कलात्मकता के प्रति उनका विशेष आकर्षण था। 'सुमित्रानंदन पंत' (1938 ई.) पुस्तक में पंत जी की कविताओं में मनोदशाओं का उन्होंने सुंदर चित्रण किया है। धीरे-धीरे वे व्यावहारिक आलोचना से सैद्धांतिक आलोचना की ओर आकृष्ट हुए। 'रीतिकाव्य की भूमिका' तथा 'देव और उनकी कविता' (1946 ई.) से इसका स्पष्ट आभास मिलता है। अपनी व्यावहारिक आलोचनाओं के लिए उन्होंने विविध विषय चुने हैं – काव्य, उपन्यास, नाटक, रेखाचित्र आदि। उन्होंने मध्ययुग से आधुनिक युग तक के कृतिकारों की समीक्षा की है। किंतु वे मुख्य रूप से आधुनिक काव्य के आलोचक हैं। उनके कुछ निबंधों में फ्रायडीय प्रभाव की झलक मिलती हैं। इसलिए उन्होंने मनोविश्लेषणात्मक व्याख्याएँ की हैं। किंतु डॉ. नगेन्द्र मूलतः रसवादी आलोचक हैं। 'रस सिद्धांत ' (1964 ई.) में उन्होंने रस का पूरा विवेचन कर उसकी पुनः प्रतिष्ठा का प्रयास किया है। साहित्य को वे आत्माभिव्यक्ति मानते हैं इसलिए अनुभूति तत्व को विशेष मान्यता देते हैं।

डॉ. नगेन्द्र आधुनिक साहित्य और समसामयिक आंदोलनों से भी जुड़े रहे। जहाँ उन्होंने 'कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ ' (1962 ई.) ग्रंथ लिखा वहीं वे समय-समय पर नयी कविता, उपन्यासों और कहानियों की भी आलोचना करते रहे हैं। 'नयी आलोचनाः नए संदर्भ ' (1970 ई.) में मूल्यों का विघटन, सांस्कृतिक संकट, आधुनिकता का प्रश्न आदि पर भी उन्होंने विचार व्यक्त किए हैं। पाश्चात्य काव्य शास्त्र के नए सिद्धांतों की जानकारी देने के लिए उन्होंने 'काव्य बिंब' (1967 ई.) की रचना की। डॉ. नगेन्द्र की आलोचना पद्धति के प्रतिनिधि समालोचक रहे। वाजपेयी ने द्विवेदी काल के उत्तरार्द्ध में आलोचना पद्धति के प्रतिनिधि समालोचक रहे। वाजपेयी ने द्विवेदी काल के उत्तरार्द्ध में आलोचना में भारतीय और पाश्चात्य तत्वों पर विचार हुआ है। वे रस, अलंकार आदि पूर्वी तथा आवेग, कल्पना चिंतन, अनुभूति, बिंब आदि पाश्चात्य तत्वों के आधार पर आलोचना करते हैं। उन्होंने हिंदी आलोचना को व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक दोनों दृष्टियों से विकसित किया है। इस प्रकार डॉ. नगेन्द्र ने हिंदी आलोचना में दो कार्य किए-एक तो भारत और पश्चिम के आलोचना शास्त्र की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया। यहाँ तक कि अनुवादों के माध्यम से सामग्री सुलभ कराई। दूसरे छायावाद के शिल्प पक्ष की सूक्ष्मताओं को उजागर किया।

पं. शांतिप्रिय द्विवेदी : द्विवेदी जी ने मुख्यतः छायावादी साहित्य पर ही विचार किया है। वे छायावाद पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने वाले समीक्षक थे। वे काव्य से जीवन की प्रेरणा प्राप्ति को महत्व देते हैं। उन्होंने इस ओर संवेदनीयता को काव्य के उद्देश्य में स्थान दिया है। द्विवेदी जी ने छायावादी काव्य के विकास में गांधीवाद और प्रथम विश्व युद्ध की परिस्थितियों को सहायक माना है। 'हमारे साहित्य निर्माता' (1932 ई.) 'कवि और काव्य' (1937 ई.) तथा 'साहित्यिकी' (1938 ई.) उनके प्रमुख ग्रंथ हैं।

द्विवदी जी ने 'इतिहास के आलोक' निबंध में वर्तमान कविता के क्रम विकास का तथा 'छायावाद और उसके बाद ' निबंध में साहित्य के विकास का अध्ययन किया है जिसमें उनके वैयक्तिक चिंतन की झलक है।

13.5.2 ऐतिहासिक

आधुनिक समीक्षा के आरंभ से ही ऐतिहासिक समीक्षा के दर्शन होते हैं। भारतेंदु, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा मिश्र बंधुओं में ऐतिहासिक विवेचन की प्रवृत्ति पाई गई है। ऐतिहासिक समीक्षक युग-चेतना के प्रभावों के साथ ही यह भी अध्ययन करता है कि किस रचना ने समाज के साहित्यिक और सांस्कृतिक विकास में कितना योगदान किया है। किसी भी साहित्यकार या रचना को युग और समाज से अलग करके नहीं देखा जा सकता। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने अपने 'विश्व साहित्य' और 'हिंदी साहित्य विमर्श' नामक ग्रंथों में साहित्य और देशकाल का संबंध बताया है। लेकिन कवियों को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रखकर विचार करने के प्रथम वैज्ञानिक प्रयास शुक्ल जी की आलोचना में हुए है। पर शुक्ल जी ने कवियों को साहित्य की धारा में रखकर नहीं देखा। वास्तव में ऐतिहासिक समीक्षा के समाजशास्त्रीय रूप का विकास परवर्ती काल में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा ही हुआ।

हजारी प्रसाद द्विवेदी : हजारी प्रसाद द्विवेदी मुख्यतः शुक्ल संस्थान के आलोचक थे पर अपने मानवतावादी दृष्टिकोण तथा ऐतिहासिक समीक्षा पद्धति के कारण वे शुक्ल जी से भिन्न थे। उनकी समीक्षा शैली शुरू से ही स्वच्छंदतावादी एवं ऐतिहासिक रही जिसमें मानवतावादी और समाजवादी मूल्य जुड़े हुए थे। 'हिंदी साहित्य की भूमिका' (1940 ई.) में उन्होंने आलोचना की ऐतिहासिक पद्धति की प्रतिष्ठा करते हुए बताया कि किसी रचनाकार का स्थान निर्धारण उसके सामाजिक, सांस्कृतिक एवं जातीय पृष्ठभूमि के

आधार पर करना चाहिए। अर्थात् किसी रचना के अध्ययन के लिए रचनाकार का अध्ययन और रचनाकार के लिए उसके जीवन परिवेश और परंपरा का अध्ययन आवश्यक है। द्विवेदी जी की पहली पुस्तक 'सूर साहित्य' (1936 ई.) में छायावादी भावुकता की प्रधानता थी किन्तु 'कबीर' (1942 ई.) में उनका प्रायोगिक (व्यावहारिक) दृष्टिकोण स्पष्ट हुआ। उन्होंने कबीर को सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और साहित्यिक परंपरा के व्यापक परिप्रेक्ष्य मे देखा। कबीर के भाषागत वैशिष्ट्य पर भी सबसे पहले उन्हीं की दृष्टि गई।

द्विवेदी जी मानव को जीवन के सभी प्रयत्नों का लक्ष्य मानते थे। 'अशोक के फूल ' निबंध संग्रह में संकलित उनके एक निबंध का शीर्षक है – 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है '। 'हिंदी साहित्य' (1952 ई.) में तथा अन्य स्थानों पर भी उन्होंने सूर, तुलसी आदि का मूल्यांकन मानवतावादी दृष्टि से किया। प्रेमचंद का आकलन भी इसी दृष्टि से हुआ। मनुष्यता को उन्होंने साहित्य और रस का पर्याय माना।

द्विवेदी जी ने काव्य ही नहीं, काव्यशास्त्र को भी ऐतिहासिक दृष्टि से परखा और उसकी व्याख्या की। उनकी सैद्धांतिक मान्यताएँ 'साहित्य का मर्म' में सामने आईं। द्विवेदी जी का महत्व साहित्य के मूल्यों को बदलने तथा उन्हें नवीन मानवतावादी मूल्यों से जोड़ने में है।

13.5.3 मार्क्सवादी

सन् 1936 ई. में लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ का पहला अधिवेशन हुआ जिसकी अध्यक्षता करते हुए प्रेमचंद ने साहित्य के युगानुकूल नए उद्देश्य स्पष्ट किए। इस प्रकार हिंदी में प्रगतिशीलता का एक नया दौर शुरू हुआ और उसके अनुसार आलोचना के क्षेत्र में भी नई मान्यताएँ प्रकट होने लगीं।

इस अवधि के साहित्य पर कार्ल मार्क्स की विचारधारा का प्रमुख प्रभाव रहा। मार्क्स के जीवनदर्शन के अनुसार संसार की सभी वस्तुओं में विरोधी तत्वों का संघर्ष होता रहता है। उस संघर्ष के फलस्वरूप विभिन्न पदार्थों, उनकी शक्तियों और अस्तित्वों का लगातार विकास होता रहता है। इसी को मार्क्स के 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ' से भी जाना जाता है। मार्क्स का मानना था कि समाज में पूँजीपति और सर्वहारा इन दो विरोधी शक्तियों के बीच द्वन्द्व चल रहा है।

मार्क्सवादी दर्शन का प्रमुख उद्देश्य जनता के भौतिक अभावों और दरिद्रता को दूर कर समाज में समानता लाना है। इसलिए मार्क्सवादी विचारधारा के मानने वाले साहित्यकारों ने कला को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए शोषित और पीड़ित मानव को अपने साहित्य का आलम्बन बनाया। प्रगतिशील साहित्यकार पूँजीवादी संस्कृति के विरोध और जनवादी संस्कृति के निर्माण की कामना लेकर आगे बढ़े, जिससे श्रमिक क्रांति के भावों को मजबूती मिली, विश्व बंधुत्व, नारी समानता और स्वतंत्रता तथा बौद्धिकता की भावना को बल मिला। सामाजिक यथार्थवाद और मानवतावाद के आदर्श को लेकर चलने वाले इस प्रगतिशील साहित्य में भावों की अभिव्यक्ति के लिए अलंकार गौण हो गए जिससे प्रगतिवादी काव्य सरल हुआ। नए-नए सरल छंद इसकी विशेषता बन गए।

मार्क्सवादी आलोचकों में शिवदान सिंह चौहान, प्रकाशचंद्र गुप्त और डॉ. रामविलास शर्मा अग्रणी हैं।

शिवदान सिंह चौहानः शिवदान सिंह चौहान ने मार्च 1937 ई. के 'विशाल भारत' में सबसे पहले 'भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता' शीर्षक से एक लेख लिखा जिसमें प्रगतिशील साहित्य के सिद्धांतों को सूत्रबद्ध किया। उनके अनुसार प्रगतिशील शक्ति वह है जो न केवल संसार को स्पष्ट करती है बल्कि उसे परिवर्तित करने में

भी बराबर लगी रहती है। वे प्रगतिशीलता को वर्ग-गुट, देशकाल, पार्टी आदि की सीमाओं से आँकना उचित नहीं समझते थे। जो साहित्य जीवन के यथार्थ को गहराई और कलात्मक सच्चाई के साथ प्रतिबिम्बित करता है, वही प्रगतिशील साहित्य है। उनका मानना था कि प्रगतिशील कवि जरूरी नहीं कि मार्क्सवादी ही हो, वह गांधीवादी भी हो सकता है। 'आलोचना के सिद्धांत' और 'हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष ' इनकी मुख्य रचनाएँ हैं।

चौहानजी 'हंस' और 'आलोचना' पत्रिकाओं के संपादक रहे। उनके आरंभिक निबंध 'प्रगतिवाद ' (1946 ई.) में संकलित हैं। उनके आलोचनात्मक निबंधों के तीन संकलन 'साहित्य की परख' (1947ई.), 'साहित्यानुशीलन', तथा 'आलोचना के मान' (1958 ई.) प्रमुख है जिनमें पुस्तक समीक्षाएँ और सैद्धांतिक निबंध भी हैं।

प्रकाशचंद्र गुप्तः प्रकाशचंद्र गुप्त ने मार्क्सवादी सिद्धांतों के विवेचन के साथ हिंदी साहित्य की पुरानी परंपरा और समसामयिक साहित्य का सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन किया। उनकी आलोचना सुबोधता, सरलता और शालीनता के गुणों से युक्त है। उनके तीन प्रमुख निबंध संकलन हैं - 'आधुनिक हिंदी साहित्यः एक दृष्टि' (1952 ई.), 'हिंदी साहित्य की जनवादी परंपरा ' (1953 ई.) और 'साहित्यधारा' (1956 ई.)।

डॉ. रामविलास शर्मा : डॉ. रामविलास शर्मा ने छायावादी काव्य और उसमें विशेषकर निराला के साहित्य की व्याख्या से आलोचना-कार्य आरंभ किया। रामचंद्र शुक्ल और प्रेमचंद पर भी किया गया उनका आलोचना कार्य महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना', 'प्रेमचंद और उनका युग', 'निराला की साहित्य साधना' तथा हिंदी आलोचना की उपलब्धियाँ है। रामविलास शर्मा ने मार्क्सवादी साहित्य-सिद्धांतों का कोरा सैद्धांतिक प्रतिपादन ही नहीं किया वरन् मार्क्सवादी दृष्टि से समूचे हिंदी साहित्य की परंपरा की नयी व्याख्या प्रस्तुत की। इतना ही नहीं उन्होंने बाल्मीकि, कालिदास और भवभूति के साहित्य का भी विश्लेषण किया। 'आदिकाव्य', 'साहित्य के स्थायी मूल्यों की समस्याः कालिदास', तथा 'भवभूति की करुणा ' उनकी उल्लेखनीय आलोचनाएँ हैं।

उन्होंने मार्क्सवादी आलोचना के लिए देशज जमीन तैयार किया। यह उनका सबसे बड़ा योगदान है कि उन्होंने सचेत रूप से हिंदी में मार्क्सवादी आलोचना के लिए परंपरा का निर्माण किया। मार्क्सवादी आलोचना को हिंदी की जातीय परंपरा से जोड़कर उन्होंने उसे हिंदी समाज के बीच विश्वसनीय बनाया।

'नयी कविता' की आधारभूत को उनकी आलोचना के बिना समझना कठिन है। मुक्तिबोध ने सैद्धांतिक आलोचना में अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया। आचार्य शुक्ल के बाद हिंदी आलोचना को सर्वाधिक 'पद' और शब्द मुक्तिबोध ने दिए हैं। मुक्तिबोध ने व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में भी पर्याप्त कार्य किया है। 'कामायनी : एक पुनर्विचार' में उन्होंने मार्क्सवादी दृष्टि से कामायनी का विश्लेषण किया है। धर्मवीर भारती की रचना 'अंधा युग', दिनकर की 'उर्वशी', भारत भूषण अग्रवाल की 'ओ प्रस्तुत मन' आदि जैसी कृतियाँ लिखी गईं। उनकी समीक्षाएँ उल्लेखनीय हैं।

गजानन माधव मुक्तिबोध : नए कवियों में काफी तेज और गहरी आलोचना दृष्टि रखने वाले कवि थे-गजानन माधव मुक्तिबोध। वे एक जागरूक रचनाकार थे। यूँ तो वे मार्क्सवादी विचारधारा से संबद्ध थे। उनकी गणना मार्क्सवादी आलोचकों में की जाती है किन्तु नयी कविता के मूल्यांकन को लेकर वे पुराने प्रगतिवादी आलोचकों से अलग थे। उन्होंने आधुनिक लेखक की रचना-प्रक्रिया की जटिलता का विश्लेषण किया है। यह हिंदी आलोचना को मुक्तिबोध की मुख्य देन है। 'एक साहित्यिक की डायरी ' (1964 ई.) 'नयी

कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध' (1964 ई.) और 'नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' (1971 ई.) उनकी उल्लेखनीय हैं।

डॉ. नामवर सिंह : डॉ. नामवर सिंह की आलोचना समाजवादी जीवन दृष्टि और नई कविता के भाव बोध को लेकर चली है। इसीलिए उन्हें प्रगतिवादी आलोचकों में भी गिना जाता है और नए आलोचकों में भी। उन्होंने नई कविता को सहानुभूति से परखा है।

नामवर सिंह की पुस्तक 'छायावाद' (1954 ई.) में छायावादी कविता के छाया-चित्रों में निहित सामाजिक सत्य का उद्घाटन किया गया है। इस पुस्तक में कुल 12 अध्याय हैं। विभिन्न अध्यायों के अधिकांश शीर्षक छायावादी कविता की पंक्तियों के टुकड़े हैं। 'प्रथम रश्मि ', 'केवल मैं केवल मैं', 'जागो फिर एक बार' आदि शीर्षकों से स्पष्ट है कि विवेचन में छायावादी काव्य-वस्तु से सैद्धांतिक निष्कर्ष तक पहुँचा गया है।

डॉ. नामवर सिंह ने 'कविता के नए-प्रतिमान' (1968 ई.) में नई कविता के संदर्भ में काव्य-मूल्यों का प्रश्न उठाया है। काव्य-समीक्षा से हटकर साहित्यिक-मूल्यों को स्पष्ट करने का प्रयास उन्होंने अपनी पुस्तक 'इतिहास और आलोचना ' में संकलित निबंधों में किया है। इसके अतिरिक्त 'इतिहास का नया दृष्टिकोण ' (1952 ई.) और 'हिंदी साहित्य के इतिहास पर पुनर्विचार ' (1962 ई.) नामक निबंधों में मार्क्सवादी दृष्टिकोण से हिंदी साहित्य के इतिहास की पुनर्व्याख्या की गई है। इन निबंधों के माध्यम से उन्होंने मूल्यांकनपरक आलोचना और साहित्यिक इतिहास के बीच संबंध स्थापित किया है।

इतना ही नहीं, नामवर सिंह जी ने कथा-समीक्षा के स्तर को भी काव्य-समीक्षा के स्तर तक उठाया। इस दृष्टि से उनकी पुस्तक 'कहानी-नयी कहानी' (1964 ई.) महत्वपूर्ण है।

13.5.4 मनोविश्लेषणात्मक

मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा के सिद्धांत के अनुसार काव्य-सृजन कवि के सामाजिक दायित्व का परिणाम नहीं वरन् उसकी प्रवृत्तियों द्वारा प्रेरित है। काव्य के पात्र, वर्ण्य-विषय, शैली आदि सभी वस्तुओं पर दमित इच्छाएँ अथवा प्रभुत्व की कामना और जीवित रहने की इच्छा की अभिव्यक्ति ही कला-कृति के स्वरूप का निर्धारण करती है। इस तरह मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा में कलाकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति को प्रमुखता दी गयी। अतः रचना को ठीक-ठीक समझने के लिए रचनाकार के व्यक्तित्व को समझना आवश्यक समझा गया।

दरअसल पश्चिमी आलोचक फ्रायड, एडलर और युंग ने साहित्य प्रेरणा के तीन सिद्धांतों की चर्चा की काम-वासना (दमित इच्छाएं), प्रभुत्व की कामना तथा जीवित रहने की इच्छा। इन सिद्धांतों ने पश्चिमी जगत में तहलका मचा दिया। इसने हिंदी साहित्य को भी प्रभावित किया। हिंदी में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय ' और पं. इलाचंद्र जोशी के उपन्यास इसी विचारधारा से प्रभावित हैं।

यूँ तो मनोविश्लेषणवादी समीक्षा-शैली के दर्शन शुक्लजी से लेकर परवर्ती काल के सभी आलोचकों में होते हें। पर मनोविश्लेषणात्मक शैली की समालोचनाएँ हिंदी में कम हैं। नगेंद्र जी ने मनोविश्लेषणवादी साहित्य सिद्धांतों के आधार पर हिंदी-साहित्य का थोड़ा-बहुत मूल्यांकन भी किया है लेकिन वे मूलतः नूतन रसवादी हैं। मनोविश्लेषणवादी समीक्षा के क्षेत्र में अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी और देवराज उपाध्याय के नाम उल्लेखनीय हैं।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय ' : अज्ञेय जी ने विशेषतः एडलर (प्रभुत्व कामना) को अपनाया। इनका समन्वित रूप ही उन्होंने ग्रहण किया। उन्होंने अपने ' त्रिशंकु ' नामक निबंध संग्रह में 'प्रभुत्व कामना ' और 'क्षतिपूर्ति ' के सिद्धांतों को स्पष्ट किया। अज्ञेय जी ने 'त्रिशंकु' के निबंध 'कला का स्वभाव और उद्देश्य' में लिखा है – 'हमारे

कल्पित प्राणी ने हमारे कल्पित समाज के जीवन में भाग लेना कठिन पाकर अपनी अनुपयोगिता की अनुभूति से आहत होकर अपने विद्रोह द्वारा उस जीवन का क्षेत्र विकसित कर दिया है, उसे एक नयी उपयोगिता सिखायी है। पहला कलाकार ऐसा ही प्राणी रहा होगा। पहली कला-चेष्टा ऐसा ही विद्रोह रही होगी।''

'अज्ञेय' ने अपनी कविता की व्याख्या के साथ ही अपने कुछ समकालीन कवियों के रचना–कर्म का मूल्यांकन भी किया। उनके द्वारा संपादित तार सप्तक की भूमिका हिंदी आलोचना में एक प्रस्थान बिंदु है। 'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक' की भूमिकाएँ भी अत्यंत बहस–तलब रहीं। उन्होंने कविता में शब्द और अर्ध दोनों क्षेत्रों में प्रयोग पर बल दिया। उनके साहित्य–चिंतन को समझने के लिए 'आत्मनेपद' (1960) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। काव्य की रचना प्रक्रिया और संप्रेषणीयता के संबंध में उनका चिंतन अत्यंत महत्वपूर्ण है।

पं. इलाचंद्र जोशी : जोशी जी के कला-विवेचन में भी फ्रायड और एडलर के सिद्धांतों का उपयोग हुआ। जोशी जी ने काव्य का चरम लक्ष्य सौंदर्य माना जिसमें मंगल भावना भी निहित है। वे मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा का उद्देश्य यह अध्ययन करना मानते हैं कि किस कलाकार के व्यक्तित्व में स्वस्थ-साहित्य सृजन की कितनी क्षमता है और कैसे है। इस तरह जोशी जी ने सामंजस्य के सिद्धांत पर बहुत जोर दिया। काव्य का उद्देश्य वे जीवन- शक्ति प्रदान करना मानते हैं। इसलिए छायावाद की विलासिता और पलायनवादी प्रवृत्ति के तथा प्रगतिवाद के नग्न यथार्थ के घोर विरोधी रहे। जोशी जी ने 'साहित्य-सर्जना ' (1940 ई.), 'विवेचना' (1948 ई.), 'साहित्य संतरण' (1953 ई.), 'विश्लेषण ' (1954 ई.), और 'साहित्य-चिंतन ' (1955 ई.) में संग्रहीत निबंधें में मनोविश्लेषण को प्रमुखता दी।

मैनेजर पाण्डेय : साहित्य के मूल्यांकन के लिए ऐतिहासिक दृष्टि और समाजशास्त्रीय दृष्टि के मेल से अपने आलोचनात्मक प्रतिमान विकसित करते हैं। इस प्रक्रिया में वे इतिहास विरोधी कलावादी चिंतन का व्यापक विरोध करते हैं। अपनी पुस्तक 'साहित्य और इतिहास–दृष्टि' के माध्यम से वे साहित्य के मूल्यांकन के लिए ऐतिहासिक दृष्टि के महत्व को स्थापित करते है तो 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' के माध्यम से हिंदी आलोचना में समाजशास्त्रीय दृष्टि का विकास करते हैं उन्होंने परंपरा के मूल्यांकन का गंभीर आलोचकीय दायित्व भी निभाया है। इस दृष्टि से उनकी पुस्तक 'भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य' अत्यंत उल्लेखनीय है। अस्मितामूलक विमर्शों के प्रति मार्क्सवादी आलोचना का नजरिया प्रायः विरोध का रहा है। पर, मैनेजर पांडेय का रवैया इन विमर्शों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रहा है। स्त्री विमर्श और दलित विमर्श के प्रति सकारात्मक दृष्टि रखते हुए वे मार्क्सवादी आलोचना के दायरे को विस्तृत करते हैं। 'शब्द और कर्म', 'अनमैं साँचा' 'आलोचना की समाजिकता' और 'आलोचना में सहमति असहमति' उनकी अन्य महत्वपूर्ण आलोचनात्मक कृतियाँ हैं।

विश्वनाथ त्रिपाठी : विश्वनाथ त्रिपाठी सहृदय आलोचक हैं। लोकवादी तुलसीदास' और 'मीरा का काव्य' जैसी पुस्तकों के माध्यम से वे इन रचनाकारों के साथ–साथ संपूर्ण भक्ति काव्य में निहित प्रगतिशील मूल्यों को रेखांकित करते हैं। मार्क्सवादी आलोचना में तुलसीदास को लेकर गंभीर बहसें हुई हैं। त्रिपाठी जी अतिवाद से बचते हुए तुलसीदास की विलक्षण लोक–संशक्ति को रेखांकित करते हैं। शुरूआती मार्क्सवादी आलोचकों के निषेधात्मक रवैये के बरक्स वे तुलसी–काव्य का युग–सदंर्भों को ध्यान में रखकर संपूर्णता में विश्लेषण करते हैं। हिंदी आलोचना' पुस्तक में उन्होंने हिंदी आलोचना की विकास–यात्रा को वस्तुनिष्ठ ढंग से प्रस्तुत किया है। हरिशंकर परसाई की व्यंग्य दृष्टि की बारीक

व्याख्या करने के साथ ही त्रिपाठी जी ने कहानी–आलोचना के क्षेत्र में सार्थक हस्तक्षेप किया है। वे 'नई कहानी' को व्यापक परिप्रेक्ष्य और संदर्भों में देखने की जरूरत पर बल देते हैं। उनका मानना है कि 'आंचलिकता, नए पारिवारिक संबंध, भ्रष्टाचार, व्यंग्य, विडंबना आदि नई कहानी की संवेदना का निर्माण करते हैं।' इस तरह वे नई कहानी को सिर्फ मध्यवर्गीय संबंधों के दायरे में देखने का विरोध करते हैं।

13.5.5 नयी समीक्षा

1950 के बाद हिंदी आलोचना का विकास नए संदर्भों में नई आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सही दिशा में अग्रसर हुआ। नई आलोचना से पूर्व किसी कृति को आँकने और परखने के लिए जो तरीके अपनाए जा रहे थे, वे मुख्यतः आलोचना के अपने मानदंड के आधार पर थे। किन्तु नई आलोचना में कृति को ही आधार बनाया गया। अतः प्रचलित पद्धतियाँ जैसे रसवादी, ऐतिहासिक, मार्क्सवादी, मनोविश्लेषणवादी स्वतः धूमिल पड़ गईं। हालांकि नयी पद्धति भी पश्चिम से ही ली गई जहाँ रैनसम, रबट पन वारेन, ब्लैकमर और टेट आदि लेखक इस क्षेत्र में प्रयोग कर रहे थे। नई आलोचना में रचना की संगति पर विशेष ध्यान दिया गया। रचना के ताने-बाने, उसके रचाव के साथ-साथ उसकी मूल्यगत प्रासंगिकता को भी मद्देनज़र रखा गया। इससे आलोचना कृति की तह तक पहुँच सकी।

'व्यक्ति स्वातंत्र्य ' के सिद्धांतों को लेकर, साहित्य की जो धारा इस काल में विकसित हुई और उसके जिन मूल्यांकन सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ, उन्हें इस वर्ग में रखा गया। उसे 'नई कविता ' या 'नवलेखन' के वज़न पर 'नई आलोचना' नाम दिया गया। इस वर्ग के आलोचकों ने व्यक्ति स्वातंत्र्य को जीवन का सर्वोच्च मूल्य स्वीकार कर साहित्य की नई मर्यादाओं की स्थापना की। उनका मानना है कि सामाजिकता ने व्यक्ति की चेतना को कुंठित कर दिया। अपनी 'कमजोरी', 'अनुपयोगिता' और 'लघुता' के एहसास से वह अपनी शक्ति और सामर्थ्य खोकर समूह और समाज का दास बन गया है। व्यक्ति को इस दासत्व से मुक्ति प्राप्त कर अपने 'अस्तित्व' की प्रतिष्ठा करनी है जो बौद्धिक जागरूकता से ही संभव है। यही साहित्य की नई मर्यादा है। मानवीय मूल्य, बौद्धिकता, आधुनिकता, क्षण के महत्व, सृजनात्मकता, विषय की उपेक्षा, काव्य का महत्व एवं कलाकार के अंतर्मन की परख आदि साहित्य-मूल्यों के साथ ही नए समीक्षक ने काव्य में लय के प्रश्न को भी उठाया।

हिंदी आलोचना में नई आलोचना के प्रयास 'अज्ञेय' से शुरू हुए और इसे आज तक आलोचकों ने न केवल अपनाया बल्कि उसे नई दिशा और नए आयाम भी दिए हैं। 'अज्ञेय ' के अतिरिक्त जो अन्य आलोचक इस पद्धति से जुड़े, उनमें से कुछ प्रमुख की चर्चा हम इस इकाई में कर रहे हैं।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' : 'अज्ञेय' ने हिंदी आलोचना में नई कविता के आस्वाद और मूल्यांकन के लिए नया आधार तैयार किया। उन्होंने 'तीसरा सप्तक ' की भूमिका में कवियों की आलोचना को कर्म की ओर प्रवृत्त किया। 'अज्ञेय' ने अपनी कविता की व्याख्या के साथ ही अपने कुछ समकालीन कवियों की समीक्षाएँ भी लिखीं। इतना ही नहीं काव्य तथा साहित्य संबंधी कुछ सैद्धांतिक स्थापनाएँ भी कीं। आधुनिक हिंदी-कविता के संकलन 'पुष्करिणी ' की भूमिका में उन्होंने जो आधुनिक कविता की विस्तृत आलोचना की है वह उल्लेखनीय है।

'अज्ञेय ' ने आरंभ में फ्रायड और एडलर के मनोविश्लेषण से प्रभावित होकर मनोविश्लेषणवादी सिद्धांतों का प्रतिपादन किया था किन्तु बाद में आगे चलकर उसे छोड़ दिया। उनके परवर्ती

विचारों के लिए 'आत्मनेपद' (1960 ई.) और 'हिंदी साहित्यः एक आधुनिक परिदृश्य' (1967 ई.) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'अज्ञेय' ने 'प्रयोग' पर विशेष बल दिया। उन्होंने शब्द और अर्थ दोनों क्षेत्रों में प्रयोग को नया स्वरूप दिया। काव्य में उन्होंने 'प्रतीक ' के महत्व पर बल दिया। उन्होंने अपनी आलोचना द्वारा नयी कविता को प्रतिष्ठित करने के साथ ही उसके मूल्यांकन के प्रतिमान भी तय किए।

मुक्तिबोध ने व्यावहारिक समीक्षाएँ भी लिखी हैं। 'कामायनीः एक पुनर्विचार' में 'कामायनी ' का उन्होने इसी दृष्टि से विश्लेषण किया है।

गिरिजा कुमार माथुर : गिरिजा कुमार माथुर ने नयी कविता के शिल्प पक्ष के साथ-साथ सैद्धांतिक पक्ष पर भी विचार किया है। उनके आलोचनात्मक निबंधों का संकलन 'नयी कविताः सीमाएं और संभावनाएं' (1966 ई.) नाम से प्रकाशित हुआ। कविता की आलोचना उन्होंने 'अस्वीकृति का नवोन्मेष' नामक निबंध में लिखी। गिरिजा कुमार के आलोचनात्मक लेखों से आधुनिक भाव-बोध का वैज्ञानिक पक्ष उजागर होता है।

शमशेर बहादुर सिंह : कवि शमशेर बहादुर सिंह ने 'हंस' और 'नया साहित्य ' पत्रिकाओं में काफी दिनों तक समकालीन कृतियों की समीक्षाएँ लिखीं, जिनका संकलन 'दो आब' (1947 ई.) नाम से प्रकाशित हुआ। इन समीक्षाओं में 'तार सप्तक' की समीक्षा उल्लेखनीय है। 'मुक्तछंद ' निबंध में भी महत्वपूर्ण विवेचन प्राप्त होता है।

धर्मवीर भारती : धर्मवीर भारती प्रयोगशील नयी कविता के पक्षधर थे। उन्होंने नयी कविता के मूल्यों को सैद्धांतिक स्तर पर स्थापित किया है। उनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं- 'साहित्य और मानव मूल्य' (1960 ई.) और 'पश्यंति' (1969 ई.)।

नलिन विलोचन शर्मा : नलिन विलोचन शर्मा अति प्रयोगशील 'प्रपद्यवाद' के प्रवर्तक माने जाते हैं। उनके आलोचनात्मक लेखों का संग्रह 'दृष्टिकोण' नाम से प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'साहित्य का इतिहास-दर्शन ' नामक ग्रंथ भी लिखा।

नेमिचंद्र जैन : जैन ने कविता, उपन्यास, नाटक आदि सभी क्षेत्रों में आलोचनाएँ लिखीं है किंतु कथा-समीक्षा और नाट्य-समीक्षा में उन्हें विशेष ख्याति मिली। 'अधूरे साक्षात्कार' (1966 ई.) पुस्तक में उन्होंने समकालीन उपन्यासों पर महत्वपूर्ण आलोचना लिखी। इसी प्रकार 'रंग-दर्शन' (1957 ई.) में नाटक-रंगमंच की विवेचना की गयी है।

लक्ष्मीकांत वर्मा : लक्ष्मीकांत वर्मा ने मानवीय संवेदना को साहित्य में सर्वोपरि माना है। उनकी 'नयी कविता के प्रतिमान' (1957 ई.) पुस्तक को नयी कविता पर पहली आलोचना पुस्तक माना जाता है।

इन तमाम आलोचकों के साथ-साथ कई अन्य आलोचक भी सक्रिय हैं - डॉ. जगदीश गुप्त, डॉ. विजयदेव नारायण साही, डॉ. शंभुनाथ सिंह, डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त, डॉ. देवीशंकर अवस्थी, डॉ. इंद्रनाथ मदान, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, डॉ. रमेश कुंतल मेघ आदि। इन नए आलोचकों द्वारा हिंदी आलोचना में साहित्य को जांचने-परखने के लिए नए मूल्य विकसित हुए, विश्लेषण की नयी प्रणाली बनी, नयी भाषा का विकास हुआ।

'दूसरी परंपरा की खोज' (1982) में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के समस्त कृतित्व का मूल्यांकन करते हुए उन्हें आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बरक्स दूसरी परंपरा का वाहक बताया। हिंदी आलोचना में शुक्ल बनाम द्विवेदी की जो बहस चली उसमें इस पुस्तक की निर्णायक भूमिका है।

कुछ अन्य विशिष्ट आलोचक

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आलोचना का विकास मार्क्सवादी आलोचना और व्यक्तिवादी आलोचना के द्वंद्व से हुआ हैं मार्क्सवादी आलोचना ने रचना की सामाजिक सार्थकता पर विशेष बल दिया तो वही व्यक्तिवादी आलोचना का कृति के वैशिष्ट्य पर विशेष आग्रह रहा। मार्क्सवादी आलोचकों ने विचारधारा को संदर्भ बिंदु बनाया जबकि व्यक्तिवादी आलोचकों ने आलोचना के लिए किसी भी तरह की वैचारिक प्रतिबद्धता को अनावश्यक बताया। मार्क्सवादी आलोचकों के बारे में हम आपको इससे पूर्व बता चुके हैं। अब हम अन्य आलोचकों की चर्चा करेंगे जिनका स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आलोचना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है :

नलिन विलोचन शर्मा : नलिन विलोचन शर्मा रूपवादी आलोचक थे, लेकिन उनका रूपवाद व्यापक और उदार था। उनके लिए रूपवाद एक ऐसा साहित्यिक मूल्य है, जिसके आधार पर वे अपनी आलोचना में किसी साहित्यिक कृति को साहित्येतर कारणों से नहीं, बल्कि साहित्यिक कारणों से कमतर या श्रेष्ठ घोषित करते हैं। उन्होंने साहित्य कला की दृष्टि से प्रेमचंद के महत्व को प्रतिपादित किया। रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' के महत्व की और सबसे पहले हिंदी जगत का ध्यान खींचने का श्रेय नलिन विलोचन शर्मा को ही जाता है। उनके साहित्य, आधुनिक साहित्य और पाश्चात्य साहित्य तीनों में उनकी समान रूप से गति थी। उनका मुख्य आलोचनात्मक लेखन 1940 से 1961 के बीच का है। साहित्य संबंधी शायद ही कोई विषय हो, जिस पर उन्होंने विचार न किया हो। उपन्यास उनकी आलोचना का सबसे शक्तिशाली पक्ष है। दृष्टिकोण' 'साहित्य का इतिहास दर्शन', 'हिंदी उपन्यास : विशेषतः प्रेमचंद' आदि उनकी उल्लेखनीय पुस्तकें हैं

विजयदेव नारायण साही : विजयदेव नारायण साही की आलोचना–दृष्टि न तो इतिहास निरपेक्ष है और न ही समाज निरपेक्ष। पर वे इतिहास और समाज के साथ साहित्य के रिश्ते के संबंध में मार्क्सवादी आलोचना की मान्यताओं से सहमत नहीं है। इस दृष्टि से उनका निबंध 'मार्क्सवादी समीक्षा की कम्युनिस्ट परिणति' उल्लेखनीय है, जिसमें उन्होंने मार्क्सवादी आलोचना के संकीर्णतावाद को लक्षित किया है। 'लघुमानव के बहारे हिंदी कविता पर एक बहस', शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट' आदि जैसे उनके कुछ निबंधों की चर्चा आलोचना में लंबे समय तक होती रही। प्रखर आलोचनात्मक निबंधों के अतिरिक्त साही की आलोचनात्मक कृति 'जायसी' हिंदी आलोचना की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस पुस्तक में उन्होंने जायसी की कवि–दृष्टि और उनके काव्य–सौंदर्य का जिस तरह से उद्‌घाटन किया है, वह विलक्षण है।

रघुवंश : 'साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य' रघुवंश की उल्लेखनीय आलोचनात्मक कृति है। यह उनके आलोचनात्मक निबंधों का प्रतिनिधि चयन है। नयी कविता पर विचार करते हुए उनका एक महत्वपूर्ण निबंध 'समसामयिकता और आधुनिक हिंदी कविता है। सामाजिक उपयोगिता को ध्यान में रखकर साहित्य–सृजन के वे पक्षधर नहीं है। उन्होंने आधुनिक रचनाशीलता के संदर्भ में भारतीय काव्यशास्त्र की अर्थवत्ता पर गंभीर विचार किया है।

रामस्वरूप चतुर्वेदी : रामस्वरूप चतुर्वेदी आधुनिक साहित्य के आलोचक हैं। उन्होंने 'कामायनी', 'अज्ञेय' और रामचंद्र शुक्ल पर उन्होंने महत्वपूर्ण लिखा है। 'कामायनी का पुनर्मूल्यांकन' में वे 'कामायनी' के रचना–विधान और बिंब–विधान का गहराई से मूल्यांकन करते हैं। अपने प्रिय रचनाकार अज्ञेय पर उन्होंने 'अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या' जैसी उल्लेखनीय किताब लिखी जो उनपर लिखी गई कुछ बेहतरीन पुस्तकों में शामिल है। 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' उनकी सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तक है। 'हिंदी नवलेखन', 'भाषा और संवेदना' 'इतिहास और आलोचना–दृष्टि' तथा 'आचार्य रामचंद्र शुक्लः आलोचना का अर्थ : अर्थ की आलोचना उनकी अन्य महत्वपूर्ण आलोचनात्मक

पुस्तकें हैं।

लक्ष्मीकांत वर्मा : लक्ष्मीकांत वर्मा नयी कविता और प्रयोगवाद को केंद्र में रखकर काव्य–आलोचना का मानदंड तैयार करते हैं। उनकी पुस्तक 'नयी कविता के प्रतिमान' नयी कविता को समझने का पहला व्यवस्थित प्रयास है। इसी पुस्तक में उन्होंने नयी कविता के संदर्भ में 'लघुमानव' की अपनी प्रसिद्ध मान्यता रखी है। उनहोंने नयी कविता के मूल्यांकन के लिए रस जैसे पुराने काव्य प्रतिमानों की अप्रासंगिकता को उजागर किया है। काव्य आंदोलन के रूप में नई कविता की रचना–प्रक्रिया और उसके वैचारिक भाव–बोध का उनके द्वारा किया विश्लेषण काफी महत्व का है।

नेमिचंद्र जैन : नेमिचंद्र जैन 'तार सप्तक' के कवि थे और उन्होंने मुक्तिबोध रचनावली का संपादन किया था। उनकी पुसतक 'अधूरे साक्षात्कार' उपन्यास की आलोचना में प्रस्थान बिंदु है। उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान नाट्यालोचन के क्षेत्र में हैं उनके द्वारा संपादित पत्रिका 'नटरंग' की हिंदी नाट्यालोचना के विकास में महती भूमिका रही है। 'रंग दर्शन' और 'भारतीय नाट्य परंपरा' नाट्यालोचन से संबंधित उनकी महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं।

विजय बहादुर सिंह : विजय बहादुर सिंह ने छायावाद के तीन प्रमुख कवियों :– प्रसाद, निराला और पंत– की कविताओं के केंद्र में रखकर एक महत्वपूर्ण किताब लिखी है 'छायावाद के कवि'। यह पुस्तक छायावादी काव्य के मूल्यांकन की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इसके बाद उन्होंने अपना सर्वाधिक आलोचनात्मक लेखन नागार्जुन को केंद्र में रखकर किया। 'नागार्जुन का रचना–संसार', 'नागार्जुन संवाद', 'कविता और संवेदना' आदि उनकी उल्लेखनीय पुस्तकें हैं। आलोचनात्मक पुस्तकों के अतिरिक्त उन्होंने 'भवानी प्रसाद मिश्र ग्रंथावली (आठ खंड), 'दुष्यंत कुमार ग्रंथावली' (चार खंड) और नंद दुलारे वाजपेयी ग्रंथावली (आठ खंड) का संपादन भी किया है। उन्होंने हिंदी आलोचना को देशज संदर्भों में विकसित करने का गंभीर प्रयास किया है।

बोध प्रश्न

7) शुक्लोत्तर युग में आलोचना की जो प्रमुख नई पद्धतियाँ आईं - वे कौन-सी थीं?

i) ....

ii) ....

iii) ....

iv) ....

8) शिवदान सिंह चौहान, प्राकश चंद्र गुप्त और डॉ रामविलास शर्मा की दो-दो कृतियों के नाम लिखें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

9) स्वातंत्र्योत्तर हिंदी और आलोचना के विकास में योगदान देने वाले चार प्रमुख आलोचकों के नाम लिखें।

i) ....

ii) ....

iii) ....

iv) ....

अभ्यास

2) मार्क्सवादी और मनोविश्लेषणात्मक आलोचना पद्धतियों की मुख्य प्रवृत्तियाँ लगभग 15-20 पंक्तियों में लिखें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

13.6 शब्दावली

मानवीय मूल्य	:	वे व्यक्ति मूल्य जो समाज-मूल्य के विरोधी न होकर उनके पोषक हों। ज़ाहिर है जो मानवता के पोषक हों।
मानवतावादी	:	मानववाद एक प्रमुख विधारधारा है जिसके अनुसार मनुष्य ही मनुष्य का प्रतिमान है, कोई दिव्य सत्ता नहीं । इस विचारधारा को मानने वाले मानववादी कहलाए। उनका मानना है कि मनुष्य में जो पाशविक है और जो दिव्य है, उन दोनों के मध्य में कुछ ऐसा है जो पूर्णतः मानवीय है और उसी को नैतिकता, कला, सौन्दर्यबोध तथा अन्य आचार-विचार का प्रतिमान मानना चाहिए।
यथार्थवाद	:	साहित्य की एक विशिष्ट चिंतन-पद्धति, जिसके अनुसार कलाकार को अपनी कृति में जीवन के यथार्थ रूप का अंकन करना चाहिए।

13.7 सारांश

इस इकाई में आपने ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में हिंदी-आलोचना के क्रमिक विकास का अध्ययन किया। आपने पढ़ा कि किस प्रकार तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तनों से लोगों में जागृति आई। मुद्रण कला के विकास से अनेक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगीं। विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाने लगी। पाश्चात्य साहित्य का भी प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप अन्य गद्य विधाओं के साथ आलोचना की भी शुरूआत आधुनिक युग यानी भारतेंदु युग से हुई। आपने यह भी जाना कि भारतेंदु युग में आलोचना केवल गुण-दोष विवेचन तक ही सीमित रही लेकिन द्विवेदी युग से हिंदी आलोचना में अधिक तर्कशक्ति और विचार क्षमता ने प्रवेश किया। हिंदी आलोचना को वैज्ञानिक आधार शुक्ल युग में ही मिला। उसमें विश्लेषण की प्रवृत्ति भी आई। इस तरह आपने देखा कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल का हिंदी आलोचना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा। यही कारण है कि हमने हिंदी आलोचना का विकास केंद्र आचार्य रामचंद्र शुक्ल को मानते हुए उसे तीन युगों में बाँटा -

1) शुक्ल पूर्व हिंदी आलोचना
2) शुक्लयुगीन हिंदी आलोचना
3) शुक्लोत्तर हिंदी आलोचना

आपने पढ़ा कि शुक्लोत्तर युग में समीक्षा की अनेक नयी पद्धतियाँ अपनाई जाने लगीं क्योंकि युगीन साहित्य को समझने के लिए आलोचना के पुराने मानदंड काफी नहीं थे। इन पद्धतियों में प्रमुख है -स्वच्छंदतावादी, ऐतिहासिक, मार्क्सवादी, मनोविश्लेषणात्मक और नयी आलोचना।

आलोचना की विभिन्न पद्धतियों और प्रवृत्तियों को अपनाने वाले आलोचकों के प्रयासों की संक्षेप में जानकारी भी इस इकाई में दी गई। कुल मिलाकर हिंदी साहित्य के विकास के साथ-साथ आलोचना के मूल्यांकन में भी प्रगतिशील परिवर्तन हुए हैं, किंतु अभी आलोचना को विभिन्न नए आयामों की आवश्यकता है।

13.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

नंद दुलारे वाजपेयी	: आधुनिक साहित्य	: भारती भंडार, इलाहाबाद।
डॉ. नगेंद्र (सम्पादक)	: हिंदी वाङमय बीसवीं शती	: विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा। प्र.सं. 1972, मूल्य 100 रु.।
डॉ. भगवत् स्वरूप मिश्र	: हिंदी आलोचना उद्भव और विकास	: साहित्य सदन, देहरादून प्र.स. 1972 ।
डॉ. मक्खनलाल शर्मा	: आलोचना के तीन आयाम	प्रेमशील प्रकाशन दिल्ली। प्र.सं. 1986, मूल्य 100 रुपये
डॉ. रमेश तिवारी	: हिंदी आलोचना का इतिहास	संगम प्रकाशन इलाहाबाद, प्र.सं. 1989, मूल्य 70 रुपये
विश्वनाथ त्रिपाठी	: हिंदी आलोचना	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1970, दि.सं. 1982 मूल्य 40 रुपये

13.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) आलोचना की शुरूआत के प्रमुख पाँच कारण थे -

   i) मुद्रण कला का विकास

   ii) राजनीतिक और बौद्धिक जागृति

   iii) एक विषय पर अनेक पुस्तकों का होना

   iv) पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव

   v) गद्य का विकास

2) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को केंद्र में रखते हुए हिंदी आलोचना को तीन युगों में बाँटा गया है -

   i) शुक्ल पूर्व युगीन आलोचना

   ii) शुक्लयुगीन आलोचना

   iii) शुक्लोत्तर युगीन आलोचना

3) शुक्ल पूर्व युगीन हिंदी आलोचना को जिन तीन वर्गो में विभक्त किया गया है, वह हैं -

   i) भारतेंदु पूर्व हिंदी आलोचना

   ii) भारतेंदुयुगीन हिंदी आलोचना

   iii) द्विवेदीयुगीन हिंदी आलोचना

4) भारतेंदु युग की तीन आलोचना पुस्तकों के नाम हैं -

   'नाटक ', 'संयोगिता स्वयंवर ', 'सच्ची समालोचना '।

   द्विवदे युग की तीन आलोचना पुस्तकें हैं -

   'हिंदी नवरत्न ', 'काव्य प्रभाकर ', 'देव और बिहारी '।

5) आलोचना में शुक्लजी ने विश्लेषण, विवेचन और निगमन जैसे तत्वों को प्रमुखता दी। काव्य की मूल प्रवृत्तियों और उसमें निहित शाश्वत तत्वों की खोजबीन को महत्ता दी। कृति को देशकाल सापेक्ष रखकर परखने का आह्वान किया। काव्य में मानवीय मूल्यों को प्रमुखता दी गई।

6) i) जनार्दन प्रसाद झा　　ii) डॉ. रामकुमार वर्मा

   iii) आचार्य रामचंद्र शुक्ल　　iv) डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा

7) i) स्वच्छंदतावादी समीक्षा ii) ऐतिहासिक समीक्षा

   iii) मार्क्सवादी आलोचना　　iv) मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा

   v) नयी समीक्षा

8) शिवदान सिंह चौहान : i) साहित्य की परख

ii) आलोचना के मान

प्रकाशचंद्र गुप्त : i) आधुनिक हिंदी साहित्यः एक दृष्टि

ii) हिंदी साहित्य की जनवादी परंपरा

डॉ. रामविलास शर्मा : i) प्रेमचंद

ii) निराला की साहित्य साधना

9) i) सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

ii) गजानन माधव मुक्तिबोध

iii) लक्ष्मीकांत वर्मा

iv) डॉ. नामवर सिंह

अभ्यास

1) स्वयं करें।

2) स्वयं करें।